हिन्दी

शीराज़ा

सम्पादक

केसर सिंह 'मधुकर'

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, जम्मू

शीराज़ा

(हिन्दी)

अंक–१, १९७०

K. P. SABHA AMBPHALLA
LIBRARY
No ....
Date..........
JAMMU

संचालक

नीलाम्बर देव शर्मा

(सचिव)

सम्पादक

केहरि सिंह 'मधुकर'

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू।

वार्षिक : आठ रुपये | प्रति अंक : दो रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार
सम्पादक "शीराज़ा" (हिन्दी)
ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू कश्मीर
एक्सचेंज रोड, जम्मू ।
फोन : ५०४०

श्री नीलाम्बरदेव शर्मा, सैक्रेटरी, द्वारा ललितकला संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मु व कश्मीर के लिए प्रकाशित तथा अमर आर्ट प्रैस, जम्मू में मुद्रित ।

इस अंक में

लेख

कश्मीर के प्रसिद्ध काव्यकार मकबूल शाह क्रालवारी १ डा० शिबन कृष्ण रैना
डोगरी कवि-लाला रामधन ११ जगदीश चन्द्र साठे
खड़ी बोली : उद्गम एवं विकास २३ डा० जवाहर लाल हंडू
पुरमण्डल ३३ सूरज सराफ
संस्कृत कवि चण्डीदास की जन्म-भूमि पुण्डरीक पुर (पुण्डरी) ३६ गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद'
हमारी एकता के प्रतीक ४६ डा० हरिहर प्रसाद गुप्त

काव्य-धारा

कश्मीर तुम्हारे बिना ६२ भूपेन्द्र कुमार स्नेही
गीत ६३ श्रीकान्त जोशी
गंधाते-शूल ६४ तारा दत्त निर्विरोध
साकार कल्पना ६५ मनसा राम चंचल
दो कविताएं ६६ सुतीक्षण कुमार आनन्दम्
डोगरी लोक गीत ६७ ....

कथा-साहित्य

परछाइयाँ (डोगरी कहानी) ६८ बन्धु शर्मा
एक भीड़-भाड़ वाला शहर ७५ शशिप्रभा शास्त्री
मां मुझको टैगोर बना दो (पंजाबी कहानी) ८४ मूल-मोहन भण्डारी
अनु.-फूल चन्द्र 'मानव'

स्तम्भ

बिम्ब-प्रतिबिम्ब
गीत (डोगरी) ९३ मूल-यश शर्मा
अनु.-शम्भु नाथ शर्मा

सम्पादकी

शीराज़ा हिन्दी १—१९७० का यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुए मन बेकाबू सा हो रहा है क्योंकि यह अंक आप को सौंपने से पहले २८ अप्रैल १९७० दिन के एक बजे जीवन इस शीराज़ा हिन्दी के सुयोग्य सम्पादक नरेन्द्र खजूरिया को मौत के हाथों सौंप चुका है। हर मानव भी तो एक पत्रिका की तरह ही होता है। काव्यमय, हर्ष मय, विशाद मय। गति मान, चंचल और अन्त में निश्चल, मौन ... ...

'मधुकर'

● कश्मीर के प्रसिद्ध काव्यकार

मकबूलशाह क्रालवारी

डा० शिबन कृष्ण रैणा ●

श्रीनगर के दक्षिण में लगभग चौदह मील दूर दूधगंगा के किनारे पर क्रालवोर नाम का एक गांव बसा हुआ है। कश्मीर के प्रसिद्ध काव्यकार मकबूलशाह की यही जन्मभूमि है। इनके पिता का नाम अब्दुल कदूस था। मकबूल ने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की। कुछ अरबी-फारसी की किताबें पढ़ लीं, किन्तु किताबी ज्ञान से हट कर उनकी रुचि शेर-शायरी करने की ओर बढ़ती गई। पीर-मुरीदी इनका परंपरागत व्यवसाय था। थोड़ी-सी जमीन पैतृक संपत्ति में मिली थी। किन्तु जीवन-यापन सीमित आय के कारण दुरूह हो गया था। आर्थिक संकट इनके जीवन में बराबर छाया रहा। बचपन से ही स्वास्थ्य नर्म था। बीस वर्ष की आयु में नजला, वात-कफ आदि रोग बुरी तरह से सवार हो गये थे। पेट के विकार ने इन्हें और भी दुर्बल बना दिया। जीवन के अन्तिम वर्षों में इन्होंने काफी अर्से तक नमक का सेवन नहीं किया, केवल दूध व दलिया का प्रयोग करते रहे। अपनी इस दीन-हीन स्थिति का वर्णन कवि ने दो-एक स्थानों पर किया है :—

१—छुम गोमुत गअलिब मर्ज़, करतम दफा,
या मुहम्मद मुस्तफा, बख्शुम शफा,
दोर मर्ज़ चअर्‌य अहताज,
गोम ताकत कम, त तबदील मिज़ाज,

तंगदस्ती नातवानी छम स्यठा,
या मुहम्मद मुस्तफा, बखशुम शफा।

चिर-रुग्नता मुझ पर हावी हो गई है, हे भगवान ! उसे दूर कीजिये। रोग बढ़ता जा रहा है किन्तु हाथ खाली है। शरीर की सारी शक्ति मिट चुकी है, मिज़ाज भी बदल गया है। बेबसी और लाचारी का मारा हूं। हे भगवान ! उसे दूर कीजिये।

२—प्रथ दोह परहेज़ कअर् य-कअर् य आस तंग,
ताब रुदुम नअ दर रवि रंग,
सुस्त व बेताकत गअमच छम दस्त व पा,
या मुहम्मद मुस्तफा, बखशुम शफा।

नित्य पथ्य-सेवन करते तंग आ चुका हूं। दिल कमज़ोर हो गया है। चेहरे की आभा भी फीकी पड़ गई है। हाथ और पैर शक्तिहीन हो गये हैं। हे भगवान ! मेरे रोग दूर कीजिये।

मकबूलशाह के दो संतान हुई थीं। पुत्र अलीशाह इनके निधन के समय छः महीने का था। पुत्री राजबानू श्रीनगर के मुहल्ला कैलाश पुरा के किसी पीरज़ादा वंश में ब्याही गई बताई जाती है।[1] अपने एक भतीजे को भी इन्होंने गोद लेकर बड़ा किया। संयोग से इस गोद लिये भतीज़े की तबियत भी इन्ही की भांति रोग-ग्रस्त रहती। लगभग बीस वर्ष की आयु में, भरी जवानी में, इस नौजवान ने मकबूल के अरमानों का गला घोंटकर महाप्रयाण किया। मकबूल के जीवन में नीरसता छा गई। यह लाडला मकबूल का गुलशन-उम्मीद था, जिसके बेवक्त मुरझाने से इन्हें बहुत सदमा हुआ। मरीज़ तो थे ही अब सेहत ने बिलकुल जवाब दे दिया।[2]

मकबूलशाह की जन्म-मरण सम्बन्धी तिथियों का सुनिश्चित रूप से पता नहीं लगता। विभिन्न विद्वानों ने इनकी मरण तिथि तथा आयु के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तावित करने के प्रयत्न अवश्य किये हैं किन्तु इनके

१—कश्मीरी ज़बान और शायरी, अबदुल अहद आज़ाद पृ० ७९

२—मक्बूल क्रालवारी प्रो० हामिदी पृ० ६ और आज़ाद पृ० ७६

जन्मकाल की निश्चित तिथि का अब तक पता नहीं चल सका है। स्वयं आज़ाद ने, जो कश्मीरी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार हुए हैं, इस प्रसंग में लिखा है। "इनका साल पैदाइश कहीं से मालूम न हो सका।"[1]

मकबूलशाह के जीवन-वृत्त को आंकने के लिए सर्वश्री आज़ाद, प्रो० हबीब अल्लाह हामिदी तथा मुहम्मद यूसुफ टेंग द्वारा दिये गये मत विचारणीय हैं। आज़ाद मकबूल के मरणकाल का सम्बन्ध उनके पुत्र अलीशाह की साठ वर्ष की आयु (सन् १९३७ ई०) में हुई मृत्यु से जोड़कर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मकबूल का जन्म-सन् और अलीशाह का मृत्यु-सन् एक था। जिस समय मकबूल इस दुनिया से चल बसे, उस समय उनका पुत्र अलीशाह केवल छः महीने का था। स्पष्ट है कि यह सन् १८७७ ई० रहा होगा। मकबूल चूंकि हमेशा रोग-ग्रस्त रहे अतः साठ या सहत्तर साल की आयु में संतान होना तनिक कठिन है। इस लिए कहा जा सकता है, कि मकबूल साहब ने लम्बी उम्र न पाई होगी।[2]

प्रो० हामिदी मकबूलशाह का जन्म १८२० ई० में मानते हैं। मरणकालके सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है—"आखिर १८५५ ई० मुताबिक १२७५ हिजरी में यह जिगर-सोख्ता इन्सान ३५ वर्ष की मुख्तसर उम्र में मौत की आगोश में सो गया"[3] हामिदी साहब ने किन आधारों पर अपने निषकर्ष दिये हैं, स्पष्ट नहीं होता।

श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग ने मकबूलशाह के जीवन-वृत्त का अधिक सतर्कता एवं गवेषणा से मूल्यांकन किया है। उनके विचार अत्यंत खोजपूर्ण हैं। टेंग साहब को वह निकाह-नामा मिला है जो मकबूल ने स्वयं अपने हाथों से अपनी पुत्री राजबानू के विबाह पर लिखा था। इस निकाह-नामा पर १४ सिफर १२९३ हिजरी (११ मार्च १८७६ ई०) सन् अंकित है। स्पष्ट है कि मकबूलशाह १२९३

१—आज़ाद पृ० ८०

२—आज़ाद साहब ने क्रालवोर के एक वयोवृद्ध रहमान चोपान से हुई भेंट का हवाला देते हुए लिखा है कि वह बूढ़ा मकबूल के हालात बता सकता है, उसने मकबूल को अच्छी तरह देखा है। उस बूढ़े के अनुसार मृत्यु के समय मकबूल की आयु ७०-७५ के करीब रही होगी। पृ० ८१

३—मकबूल क्रालवारी पृ० ७

हिजरी तदानुसार १८७६ ई० तक जीवित थे। आज़ाद के कथनानुसार मकबूल शाह का पुत्र अलीशाह साठ साल की आयु में सन् १८३७ ई० में चल बसा था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मकबूल १९७७ ई० में दिवंगत हुये थे। चूंकि निकाह-नामा मकबूल द्वारा सन् १८७६ ई० में लिखा गया है और मकबूल के निधन के समय अलीशाह केवल छ: मास का होता है, अत: आज़ाद द्वारा अन्वेषित मकबूल की पाण्डुलिपि के पन्ने पर भी १२९४ हिजरी सन् अंकित होना चाहिये था।[1] इससे सिद्ध होता है कि मकबूल की मरण-तिथि १३ सिफर १२९४ हिजरी तदा-नुसार २७ फरवरी १८७७ ई० है।[2]

मकबूलशाह के जन्मकाल के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों की तरह टेंग साहब ने भी कोई निश्चित बात नहीं कही है। यद्यपि उन्होंने इस दिशा में पर्याप्त चिंतन-मनन किया है किन्तु मकबूल की सही जन्म-तिथि का वे पता न लगा सके हैं। अनुमान लगाया जाता है कि मकबूल १८१० व १८२० ई० के बीच के दशक में कभी भी जन्मे थे।[3]

मकबूलशाह के व्यक्तित्व में कई तरह की विशेषतायें मिलती हैं। इनकी देह भरी हुई तथा कद दरमियाना था। स्याह दाढ़ी से चेहरा खिल उठा था। प्राय: सफेद पोशाक ही पहनते। सिर पर साफा बान्धने का चाव था। एकान्त-प्रिय स्वभाव ने इन्हें अन्तर्मुखी बना दिया था। अपने मकान के पास दूधगंगा के किनारे पर एक बगीचा लगवाया था, गर्मियों के दिनों में इसी बगीचे में घण्टों बैठे रहते।

मकबूलशाह ने काव्य की लगभग प्रत्येक विधा पर सफलतापूर्वक कलम चलाया है। जिस समय मकबूल ने आंख खोली उस समय कश्मीर में सिक्ख-शासन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था। जनता की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय थी, नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा था। समाज को जातिभेद,

---

१—आज़ाद ने एक स्थान पर संकेत किया है कि उन्हे मकबूलशाह की कुछ पांडुलिपियों को देखने का मौका मिला। फटे-पुराने पन्नों को टटोलते समय उन्हें एक कागज हाथ लगा जिसपर मक़बूल की तारीख-वफात दर्ज थी। दुर्भाग्य से यह तिथि अपूर्ण निकली। कागज़ के हाशिये पर केवल इतना दर्ज था—१३ सिफर । सन् का उल्लेख न था।

२—'कुलयात-मकबूल' पृ० ९ (9)   ३—वही पृ० ३२ (32)

धर्मान्धता, वैमनस्य जैसी दुष्प्रवृत्तियां घुन की तरह अन्दर ही अन्दर खोखला कर रही थीं। जब मकबूलशाह का साहित्य-क्षेत्र में आविर्भाव हुआ, उस समय डोगरा शासन अपनी दमन-नीति द्वारा गरीव किसानों पर जुल्म ढा रहा था। डोगरों द्वारा चलाई गई जागीरदारी प्रथा ने बेचारे गरीब किसान की कमर ही तोड़ डाली थी। गांव-गांव में लूट-खसोट, अत्याचार-आतंक का बोलबाला था। परिणामस्वरूप सारा समाज पतनोन्मुख हो रहा था। ऐसी ही विकट परिस्थितियों में मकबूलशाह का साहित्यिक व्यक्तित्व पनपा और उभरा।

मकबूलशाह ने अपने जीवनकाल में छः मसनवियां तथा कुछ गज़लें, मनकबत व मर्सियां लिखी हैं। मसनवियों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. गुलरेज़, २. बहार नामा, ३. पीर नामा, ४. मन्सूर नामा, ५. किस्सा हज़रत साबिर, ६. ग्रीस्य नामा।

हामिदी साहब ने उक्त मसनवियों के अतिरिक्त आबनामा, नार नामा व बेबोज नामा रचनाओं का भी उल्लेख किया है और इन्हें मकबूल की रचनायें बताया है।[1] ये रचनायें अनुपलब्ध हैं।

गुलरेज़

मसनवी गुलरेज़ मकबूलशाह की ही नहीं अपितु कश्मीरी साहित्य की अन्यतम कलाकृति है। यह एक प्रेमकाव्य है जिसमें कवि की अनूठी कवित्वशक्ति मुखर हो उठी है। जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी ने इस अनुपम कृति को १९५६ में पूर्ण साज-सज्जा के साथ प्रकाशित किया है। २४१ पृष्ठों पर आधारित इस मसनवी में २१८९ छंद तथा १२७ गीत व गज़लें आकलित हैं।[2] इस मसनवी के संपादक मुहम्मद यूसुफ टेंग हैं। टेंग साहब ने इस मसनवी का

---

१. मकबूल कालवारी पृ० १९

२. मकबूल ने गुलरेज के प्रारंभ में ईश-वंदना को स्थान दिया है और मसनवी के अन्त में छंदों व गीतों की संख्या का उल्लेख किया है :—

सनअ बाहशथ शे प्यठ शीतन बराबर ब्रहारस मंज यि नोस्खअ वोत तअसीर,
त्रोवहशय सतोवुह बअथ तेदाद, गज़ल हुमथ आम खतम ताम थव याद,
गज़ल इबयात अख हथ तअ सतोवुह, बराबर तिम तअ हथ जुतोवुह।

(यह नुस्खा (पाण्डुलिपि) सन् १२८६ हिजरी में बहार के दिनो में पूर्ण हुआ। इस में वर्णित छंदों की कुल संख्या २३२७ है जिसमें गजलों व गीतों की संख्या १२७ है। शेष २२०० छंद हैं।) टेंग साहब को पाठालोचन करते समय केवल २१८९ छंद मिले हैं। गीतों व गजलों की संख्या बराबर रही है। 'गुलरेज़' सं० मुहम्मद यूसुफ टेंग पृ० ५२

संपादन करते समय पांच पाण्डुलिपियों का पाठालोचन किया है। ये पाण्डुलिपियां संख्या में पाँच हैं जो संपादक महोदय को विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। ये नुस्खे (पाण्डुलिपियां) इस प्रकार हैं :—

१. नुस्खा कदीम, २. नुस्खा खुशखत, ३. नुस्खा नागाम,
४. नुस्खा कामिल, ५. मूल नुस्खा।

"नुस्खा कदीम" कश्मीर के रिसर्च विभाग में सुरक्षित है। इस पाण्डुलिपि के अन्त में १२९२ हिजरी सन् दिया हुआ है। मूल गुलरेज़ १२८६ हि० में लिखी गई थी। अतः यह नुस्खा मूल कृति के छः वर्षोपरान्त लिखा गया लगता है। इस नुस्खे में छंदों की जितनी अधिक संख्या मिलती है उतनी अन्य किसी में नहीं। यह नुस्खा मूल कृति की तुलना में स्पष्टता से पढ़ा जा सकता है। नुस्खा खुशखत" भी रिसर्च विभाग की देन है। यह पाण्डुलिपि अत्यन्त सफाई के साथ तथा सुरुचिपूर्ण ढंग से लिखी गई है। दुःख इस बात का है कि इसका अन्तिम पृष्ठ अप्राप्य है। "नुस्खा नागाम" भी रिसर्च विभाग के यहां सुरक्षित पड़ा है। इसकी लिखाई अस्पष्ट है। इसके लेखक नागाम गांव के कोई व्यक्ति प्रतीत होते हैं। "नुस्खा कामिल" मुहम्मद अमीन कामिल की निजी संपत्ति है। इसकी लिखाई अपेक्षाकृत सुन्दर है। इस नुस्खे में अनेक ऐसे छंद नहीं मिलते जो अन्य नुस्खों में उपलब्ध हैं। इसका रचनाकाल १३१९ ई० है। "मूल नुस्खा" टेंग साहब को श्रीनगर के प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता व प्रकाशक श्री गुलाम मुहम्मद नूर मुहम्मद से प्राप्त हुआ है।[1]

मसनवी गुलरेज़ फारसी कवि ज़िया-अलद्दीन नख्शबी की गुलरेज़ के आधार पर लिखी गई है। यह एक तरह से फारसी गुलरेज़ का कश्मीरी रूपांतर है। रूपांतर करते समय मकबूल की सहृदय कवित्व-शक्ति ने मूल गुलरेज़ की आत्मा को सुरक्षित रखने में पूर्ण सतर्कता से काम लिया है। ज़िया-अलद्दीन नख्शबी समरकंद के समीप नख्शब (कराशी) के रहने वाले थे। कहा जाता है कि वे एक सूफी सन्त थे और कवि-हृदय रखते थे। फारसी में लिखी उनकी गुलरेज़ एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल द्वारा १९१२ ई० में श्री आगा मुहम्मद शीराज़ी व श्री आर० एफ० एज़ू के संपादन में प्रकाशित हुई है।

---

१. गुलरेज पृ० ५०-५१

गुलरेज़ का कथानक

नख्शब के राजा तैफ़ूर की कोई संतान न थी। हज़ार मिन्नतें करने के बाद उनके यहां एक शाहज़ादा हुआ जिसका नाम मासूमशाह रखा गया। शाहज़ादे को सभी तरह की विद्यायें सिखलाई गईं और वह इन सब में पारंगत होगया। एक दिन किसी आयोजन में व्यस्त था कि उसकी दृष्टि सामने खिड़की में से एक अद्भुत पक्षी पर पड़ी। उस पक्षी को देख शाहज़ादे के दिल का आराम जाता रहा। उस अद्भुत पक्षी को पकड़ने के लिए वह आतुर हो उठा। दरबार के सभी मन्त्री व अधिकारीगण उस पक्षी को पकड़ने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगे। किन्तु वह परिन्दा किसी के भी हाथ न लगा। अन्त में, हताश होकर शाहज़ादे ने अपना सिर झुका लिया। सिर पर लगे मुकुट में से मोतियों के कुछ दाने बिखर गये। पक्षी इन मोतियों को देख नीचे आ गया और पकड़ा गया। कई दिनों तक पक्षी ने मौन धारण कर लिया, न कुछ खाया न कुछ पिया। मासूमशाह परेशान हो उठा। अत्यन्त मूल्यवान मोती पिंजरे में डाले गये किन्तु पक्षी का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता गया। शाहज़ादे से पक्षी की यह हालत सही न गई। उसकी आंखें छलक पड़ीं और ज़ार-ज़ार रोने लगा। पक्षी को शाहज़ादे के इस हाल ने प्रभावित किया और उसे मुखातिब होकर कहने लगा :—

ज़ि गमख्वारी म़न क्याह छुय चे मतलब,
दोहुक आराम त्रोवुथ ख्वाब दर शब।

तुझको मेरे गम से क्या मतलब जो तू ने दिन का आराम और रातों की नींद छोड़ दी। पक्षी आगे कहता है :—

मे वनतम ज़ि हवस क्याह छुप चे हअसिल,
तुलुत कमि बायिसअ अज़ सलतनत दिल,
बअ शक्ल अस्ल योदवय आसअहअ बो,
दिलुक गम गोरुअ शाहस कासअहा बो,
वलेकिन छस बशक्ल मुर्ग वस्तआ,
बगअर तअरीफ वयाह यियि म्यानि दस्तआ।

"मुझको तू यह बता कि इस हवस से तुझे क्या हासिल होगा। तू क्यों अपने राजकाज के कार्यों से विरक्त हो गया। यदि मैं अपनी असली शक्ल में होती तो

तेरे सारे दुःखों व गमों को दूर कर देती। लेकिन परिन्दे की शक्ल में हूं, अतः प्रशंसा करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती।

अन्तिम संभाषण सुनते ही मासूमशाह के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने परिन्दे से आत्मकथा कहने का अनुरोध किया। पहले तो परिन्दे ने कहने से इन्कार किया किन्तु बाद में विशेष आग्रह करने पर अपनी बीती-कहानी सुनाने लगा :—

छु इश्कुन कअस्सअ बोजुन सख्त मुश्किल,
मो असिन अग्रंसि लोगमुत कग्रंसिप्यठ दिल।

"इश्क की कहानी सुनना अत्यन्त मुश्किल है। हाय! किसी का दिल किसी पर न आये।" आगे कहानी यों चलती है :—

मैं शहर बेतउलमान की राजकुमारी नोशलब हूं। मेरे बाप का नाम महशूरशाह और माता का नाम गुलबदन है। तुरकिस्तान में शाह बहगर्द नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ है जिसके बेटे का नाम अजबमलक है। किसी बूढ़े से उसने मेरे रूप-सौन्दर्य की चर्चा सुनी। तभी से घरबार छोड़कर, अपने अन्य मित्रों के साथ मेरी तलाश में निकला। अनेक संकटों को पार करता हुआ, अन्त में मेरी बहन नाज़मस्त द्वारा मेरे प्राप्ति स्थान का संकेत पाकर, वह बेतउलमान पहुंचा और मेरे बाग में आगया। मैं भी उसके इश्क में गिरफ्तार हो गई। दोनों एक-दूसरे में खो गये। मेरी मां को जब इस घटना की सूचना मिली तो उसने क्रोध में आकर अजबमलक को तुरकिस्तान की तरफ फेंकवाया और मुझे फूंक मारकर पक्षी बना दिया। विगत दस वर्षों से मैं इसी पक्षी-भेस में हूँ। सारी दुनिया छान मारी किन्तु अजबमलक का कहीं भी पता न लगा। तुम्हें देखकर थोड़ी राहत मिली क्योंकि तुम्हारी सूरत अजबमलक से मिलती है। तभी स्वेच्छा से तुम्हारी कैद में फंस गई। शाहज़ादा मासूमशाह ने जब नोशलब की दर्दभरी कहानी सुनी तो उसने अजबमलक को ढूंढ निकालने का वचन दिया। वह नोशलब के पिंजरे को लेकर अपने अन्य सहयोगियों सहित बेतउलमान के लिए चल पड़ा। वहां पहुंचकर मासूमशाह नोशलब की मां से मिलकर उसे सारी स्थिति बता देता है। गुलबदन के दिल में वात्सल्य उमड़ पड़ता है और वह अपनी पुत्री को पुनः उसके वास्तविक रूप में ले आती है। मासूमशाह नोशलब के माता-पिता को नोशलब व अजबमलक की शादी कराने के लिये तैयार करता

है। अन्त में अजबमलक और नोशलव का निकाह हो जाता है। मासूमशाह नाज़मस्त के साथ तथा अजबमलक का मित्र रासख नोशलव की छोटी बहिन मस्तनाज़ के साथ शादी रचते हैं और सभी अपने-अपने घर लौट जाते हैं।

हिन्दी के सूफी-काव्यों की भान्ति गुलरेज़ की कथा में आध्यात्मिक संदेश निहित है। देखने में यह एक प्रेमकाव्य है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इस में इश्क-हकीकी का निर्देश है। अजबमलक साधक है और नोशलब साध्य। अपने साध्य को पाने के लिए जिस प्रकार साधक को अनेक अवरोध पार करने पड़ते हैं, उसी प्रकार (नोशलब) साध्य को पाने के लिए साधक (अजबमलक) अथक प्रयत्न करता है। स्वयं कवि ने इस बात को स्पष्ट किया है :—

१. सदफ गंज़रून मजाज़ अज़राह अदारक,
खटिथतथ मंज़ हकीकत गोहर पाक,

२. मजाज़अ किन हकीकत वुछ, नअ ओन लाग

इस दास्तान में इश्क मजाज़ी के रूप में इश्क-हकीकी का तत्व छिपा हुआ है। इश्क हकीकी को इश्क मजाज़ी के रूप में देखा।

गुलरेज़ दोनों भाव एवं शिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि की कलाकृति बन पाई है। मकबूलशाह के कविहृदय की विभिन्न धड़कनें तथा उनकी कल्पना-शक्ति इस मसनवी में स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। जब गुलबदन (नोशलब की मां) ने अजबमलक और नोशलब को बाग में प्रेमालाप करते देखा तो क्रुद्ध होकर उसने अजबमलक को तुरकिस्तान की ओर फेंकवाया और पुत्री नोशलब को अपने कमरे में पहुंचवाकर उसे बाद में फूंक मारकर परिन्दा बना दिया। जब नोशलब की आंखें खुलीं तो उसके दिल पर क्या गुज़री, उसका चित्रण कवि ने यों किया है :—

सुबह फोल बुलबुलव तुल शोर व गोसा,
गअयस बेदार मुचरेम चश्म शहला,
खबर असम बअ छस दरबर निगारस,
मुकरर गोब छि न्येन्द्र बहारस,
नज़र त्रअबम न ड्यठुम बाग न गुल,
न बूज़अम अज़ चमन आवाज़ बुलबुल,
न ड्युडुम यार न गुलज़ार न बाग,
न रातुक ऐश इलाबर जिगर दाग,

गटअ मेजम सुबह् सपनुम गमुक शाम,
मुसीबत प्यम अश्क अज़ गम करनम दाम,
हेतिम वअन्य दिन निगारस गुलज़ारस,
पस न पेशस तअ यमनस तअ यिसारस,
वुछुम न रोये ज़ेबां यारसुन्दुय,
निशाना काहं ति तस दिलदारसुन्दुय,

"सुबह् हुई और बुलबुलें चहकने लगीं, मैं जाग गई और नरगिसी आखें खोलीं। मैं समझती थी कि मेरा प्रियतम मेरी आग़ोश में होगा किन्तु जब मैंने नज़र ऊपर उठाई तो न फूल देखे, न बाग़, न बुलबुल देखे न गुलज़ार, न प्रियतम देखा और न ही रात का ऐश। केवल जिगर पर लगे दाग देखे। मेरी आंखों के सामने अन्धेरा छा गया, मेरी सुबह् शाम-गम में बदल गई, गम के आंसू आंखों से छलक पड़े। मैंने अपने महबूब को इधर-उधर, आगे-पीछे, दायें-बायें ढूंढा किन्तु उसका कहीं पर भी निशान न मिला।"

नोशलब के रूप-सौन्दर्य का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है :—

दो बादाम स्याह् बा नरगिस मस्त,
निहादा ह्रदो बर जादूगरी दस्त,
वरअ तिम चेश्मअ डीशिथ गयि येम्बरज़ल,
चलिथगयि हरनि हांगल लआय बा जंगल,
अवेज़ान छिस प्रज़लअवनिय गोशवारा,
निवान तिम ग्रायि सअतिय होश वारा,
सितारअ ज़न प्रज़नन दूरदानअ गोशन,
छि अनिमित कअम्य सना जौहर फरोशन,
सु गुलवश रवी दिलकश काकलन मंज़,
गुलाबा ज़न छु फोलमुत सुम्बलन मंज,
तिथो दोन ज़ल्फन मंज़ चेहरा शूबान,
यथ मंजस कालअ ओबरस माहताबान।

"उस रूपसी की दो काली-काली आंखें नरगिस के समान मस्त हैं, और गज़ब का जादू कर रही है। उसकी आंखों को देख नरगिस मुरझा गई, मृग बेचारे जंगलों की ओर भाग गये। उसके कानों में चमकती बालियां एक धीमी

हरकत से दिल लूट लेती हैं। इन बालियों में असंख्य मूल्यवान जवाहर जड़े हुये हैं, जो सितारों की भान्ति चमक रहे हैं। न जाने किस जौहरी ने इनको जड़ा है। उसका मुखमण्डल ऐसा दिलकश लग रहा है मानो अनेक सुम्बल पुष्पों में एक गुलाब खिला हुआ हो।"

अजबमलक और नोशलब के संयोग वर्णन में कवि ने मर्यादा का यथासंभव अनुपालन किया है :—

खुशी वाहमगर कर वनिहायत,
करिअन्य अखअकिय शिकवअ़ शिकायत,
वुछुय गयि मह्र मुतलक अखअकसिकुन,
मय फरहत कत्रअ ह्योत साकियन दुयुन,
मयुक तअसिरत द्युन मस्ती जोश,
चटिन ह्येत दूरि दूरे वस्लअक्य पोश,
दोशवय अज़ु खदं बेगानअ सपिद,
शराब शोख च्यथ मस्तानअ सपिद,
तगन प्रथ कअंसि बोज़अन्य तिम रस्ज़ात,
ज़ि आशक क्याह करान वक्त मुलाकात,

दोनों की खुशी की कोई सीमा न रही, दोनों एक दूसरे से गिले-शिकवे करने लगे। एक-दूसरे की ओर देखते-देखते दोनों बेसुध हो गये। साकी ने अमृत पिलाना शुरु कर दिया और दोनों वस्ल की शोखियों का मज़ा लेने लगे। दो आशिक संयोग के समय क्या करते हैं, हर अक्लमन्द आदमी समझ सकता है।"

मसनवी में वर्णित घटनायें अबाध गति से अग्रसर हों, इस के लिए शैली का संवादात्मक एवं वर्णनात्मक होना अनिवार्य है। जब अजबमलक नोशलब को प्राप्त करने के लिए प्रयाण करता है तो रास्ते में उसे अनेक मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कई दिनों तक लगातार चलने पर भी उसे कोई आदमी नहीं मिलता और न ही कोई गांव नज़र आता है। आखिर एक दिन दूर से कोई गांव दीख पड़ता है। इस प्रसंग का वर्णन कवि की वर्णनात्मक शैली में यों हुआ है :—

वुछिन अज़ दूर बाला अख इमारत,
ह्येचअन वथ तथइमारचि कुन गयस सथ,

ब नज़दीक इमारति वोत दोरान,
सपुद खोश ओडा केंछा छु थारान,
कोरुन दुबदुब तअ वोयन हलकअ दर,
निगेवा काह ति वुछुन न डेडि अन्दर,
दिलन वोननस इमारत आसि खअली,
मुचरुनस बर अन्दरकुन चाव हअली,

दूर से एक ऊंची इमारत दिखाई पड़ी, साहस बंधा और उस इमारत की ओर चल पड़ा। दौड़ता हुआ इमारत के पास पहुँचा, मन में खुशी भी थी और डर भी। धीरे से द्वार खटखटाया किन्तु भीतर किसी को न पाया। सोचा इमारत खाली होगी, द्वार खोलकर इमारत के अन्दर प्रवेश किया।

कवि की संवाद-शैली का एक नमूना भी देखिये। अजबमलक में बढ़ती हुई प्रेमपीड़ा को देख उसके पिता दिलासा देते हुए समझाते हैं : -

अछिन हंदि गाशअ हा खोशबाशि म्यनि,
यि क्याह् ओसुय चे ल्यूखमुत ड्यकअ लानि,
चअ वनतभ अश त राहत क्याह्जि त्रोवुथ,
हयोतुथ मातम त खलूत खानअ त्रोवुथ,
द्युत कवअ तरक ख्वाब व ताब आराम,
रोदुथ गम अश्कुन कोरथस ब बदनाम,
करख खअइश चम योदवय माह् ताबा,
सितारव सअत्य बअ बोन वालन यकआ,
अमा तमिसुन्द छु ना कुनि जायि पेगाम,
न कांह नेबा निशाना रास मे आम,
वअ सोज़न चानि बापत सौयरु लश्कर,
तिमय छोड़न ब हर जा चोन दिलबर,
दोपुस तअम्यतोरअ, ए शाह जवां बक्त,
बअ आशिक कर छु लायक ताज त तख्त,
छि राहे इश्क राहे रंज व ख्वारी,
सज़ाये आशकां छनअ शहर यारी,
मे छुम दर सर होश ज़ा यारदिलबर,
मे सर ताज जहांदअरी शूबेम कर,

ज़िआशक न पादशअही यिन छि दुशवार,
यियि न आशकन हंदि दस्त कांह कार,
छि नफरत अज़कार आशकन दुनिया
बलेमित छि अज़ आज़ार तिम दुनिया

ऐ मेरे आंखों के प्यारे, मन के दुलारे, यह तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा था जो तुमने दिन का आराम और रातों की नींद गंवा डाली। अपने साथ-साथ मुझे भी बदनाम कर डाला। यदि तू कहे तो मैं आकाश से तारों सहित सूरज को नीचे ज़मीन पर ले आऊं। तू मुझे उसका पता बता दे तो मैं अपनी सारी सेना भेजकर तुम्हारे 'दिलबर' को ढूंढ निकालूं। इस पर अजबमलक ने उत्तर दिया—हे राजन्, मैं आशिक हूं और ताज-तख्त की बातें क्या जानूं, इश्क की राहें गम व दुःख से पूर्ण होती हैं, मेरे सिर में तो यार की सूरत बसी हुई है, भला उस पर ताज कैसे लग सकता है। आशिकों द्वारा कोई काम नहीं हो सकता। आशिकों से नफरत करना तो दुनिया का स्वभाव है और इसी नफरत व उपेक्षितभाव ने आशिकों का उद्धार किया है।

गुलरेज़ मकबूलशाह की ऐसी रससिक्त कृति है जिसमें कवि का रसावेग हर दृश्य, हर वस्तु, हर आकर्षण और हर 'सुन्दर' में रमना चाहता है। कवि के मीठे सपने, उसके हृदय की मधुर सिहरन, दिल का दर्द इस कलापूर्ण मसनवी में एक-साथ गुंफित हैं।

बहारनामा

यह मकबूल की एक संक्षिप्त मसनवी है। इसमें वसंतागमन के उपलक्ष्य में कवि के मुक्त हृदय से निकले उद्गार आकलित हैं। प्रकृति-जगत् के नवशृंगार तथार उसके परिवर्तन का सजीवतापूर्वक चित्रण इस मसनवी में मिलता है। निशात बाग़, शालीमार बाग़, तेलबल आदि प्रकृति-स्थानों की रंगीनियों का कवि ने सहृदयता से अंकन किया है। वसंत अपने साथ प्रेमियों के लिए नई आशायें व उमंगें भी लाता है—कवि ने इस मधुर पक्ष को मीठी पुलकन के साथ छुआ है। एक अंश देखिये :—

बहार आव येम्बरज़लन फुलय,

ज़ि ख्वाब गरा सुम्बलव तुलकलय,
वहार आलम सपुद मुश्क बुय,
छु सरुब्ज़ खंदान लब आवजोय,
वहार आव तुल शोर पांचादरव,
छि आवान मानन्द अईन परतव,
बहार आव ग्रज़ जानवरव तुलुख,
चोलख गुल वुछिथ गमगोसअ दिल फोलुख,
बहार आव कमरी छु कुक्क करान,
समिथ फाख्तअ ज़िक्र हू हू करान,
अमा दिल मे छुम वहार दिलवर खराव,
वहारुक हवा तस सिवा छुम अज़ाब,
मूहित गोम छुम कथ मकानस बिहिथ,
वुहिथ गोम सीनअ हयकस मा शिहिथ,
तमन्ना छुम दमा डेशहन यथ दिलस, ए
यिमन लोलअ ज़खमन मे मरहम प्येयस,
यितम रोशअ पोशन करथ मालअ बो,
बअ नो चालय दूरेर रटिथ नालअ बो ।

वहार आ गई और नरगिस के शगूफे फूट निकले । सुम्बल पुष्प ने गहरी नींद से सिर उठा लिया । वहार आगई और सारी प्रकृति महक उठी, नद-नदियों के कूल-किनारे हरे हो उठे । बहार आ गई और झरनों ने शोर मचाया और आइने की भान्ति चमकने लगे । वहार आ गई और पक्षियों ने कलरव से दिशाओं को गुंजा दिया और फुलों को देख उनका ग़म दूर हो गया । वहार आ गई और कोयल ने कुक्क की मधुर तान छेड़ दी, फाख्ता हूहू करने में व्यस्त हो गई । वहार आगई और मन के सभी क्लेश दूर हो गये, लेकिन मेरा दिल माशूक के अभाव में बेकरार है । उसके बिना वहार की बयार काटने को दौड़ आती है । न जाने वह किस जगह बैठा हुआ है, उसने मुझे लूट लिया है और मेरा दिल दहक रहा है । मैं यह जुदाई सहन नहीं कर सकता, मेरी तमन्ना है कि एक बार वह माशूक आये और मेरे प्यार के ज़ख्मों पर मलहम लगा जाये, मैंने उसके स्वागत के लिये फूलों का एक हार तैयार कर लिया है, मैं अब उसकी निठुरता सह नहीं सकता ।

पीरनामा

यह भी एक संक्षिप्त मसनवी है। आज़ाद का कहना है कि यह अपेक्षाकृत एक लम्बी मसनवी थी किन्तु बाद में इसे संक्षिप्त किया गया। [1]इस मसनवी में पीरों के आडम्बरपूर्ण व्यवसाय का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन है। साथ ही तत्कालीन धर्मभीरू समाज की स्थिति का भी चित्रण मिलता है। पीर अपने मुरीदों को कैसे चकमा देकर वश में कर लेता है, उसकी वाक्-पटुता तथा व्यवसाय-कुशलता आदि का इसमें उल्लेख है। सम्भवत: तत्कालीन पीरसमाज ने कवि की इन व्यंग्योक्तियों के कटु-सत्य को बर्दाश्त न किया हो, इसी लिये बाद में इस मसनवी को संक्षिप्त किया गया लगता है। संक्षिप्तीकरण का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि मकबूलशाह स्वयं पीर थे, अत: उनके सम्बन्धियों ने उन्हें उक्त मसनवी को संक्षिप्त करने के लिए बाध्य किया होगा। इस मसनवी से उद्धृत एक अंश देखिये :—

चरस तअ बंगअ च्यथ युस नंगअ फेरि,
करन तस पछ दपन यिर गई फकीरी,
थोकन अथअ दारनस, चरसअ थोकन अस,
फलअनी बअड़ बलाय आमअच अमी कअस,

चरस और भांग पीकर जो नंगा फिरे, उसे ऊंचा फकीर पीर मानकर ये धर्म-भीरु विश्वास करेंगे। उसकी थूक को चाटेंगे और कहेंगे कि इसने अमुक को बला को टाल दिया—वह महान है।

मंसूरनामा

"मंसूरनामा" शेख मंसूर के जीवनवृत्त एवं उनके सूली पर चढ़ने वाली करुण-घटना पर आधारित है। यह एक सुन्दर मसनवी बन पाई है। इस मसनवी में मकबूल की परिपक्व कवित्व-शक्ति का परिचय मिलता है। इस मसनवी में २३० छंद हैं। मसनवी के प्रारम्भ में कवि ने इश्क की महिमा का बखान किया है। मंसूर के आत्मदान-सम्बन्धी प्रसंग का कवि ने मार्मिकता के साथ चित्रण किया है :—

---

१. 'कश्मीरी जबान और शायरी' भाग ३, पृ० ८६

दारअ वअलिथ शेख मंज़ नारस छुनुख,
गव दअज़िथ वति नार पथकुन सूर रुद,
नारअ निश मंसूर बाकय नूर रुद,
सूर न्यू वावन तअ दरियावस छनुन।

सूली से उतार कर मंसूर को आग में फेंका गया। आग में वह जल गया और राख शेष रह गई। राख को वायु उड़ा ले गई और उसे दरिया में प्रवाहित किया।

किस्सा हज़रत साबिर

इस मसनवी में हज़रत साबिर मुहम्मद अयूब की प्रशंसा में लिखे गये २९५ छंद संग्रहीत हैं। स्वयं मकबूलशाह के कथनानुसार इस में ३०१ छंद थे, किन्तु छः छंदों का पता नहीं चलता। [1]इस मसनवी का रचनाकाल कवि ने इस प्रकार वर्णित किया है :—

सन बाहशथ ओस बेयि पंचाह साल,
तेलि वोनुम यि किस्सअ शीरीं मकाल।

सन् १२५० था, जब मैंने यह हृदय-स्पर्शी किस्सा लिखा। कवि का सन् १२५० से अभिप्राय हिजरी के १२५० सन् अथवा १८३४ ई० से है। स्पष्ट है कि यह कवि की प्रथम कृति है और गुलरेज़ के सोलह वर्ष पूर्व लिखी गई है। इस मसनवी में कला की प्रौढ़ता नहीं मिलती जो अन्य मसनवियों में देखने को मिलती है।

ग्रीस्यनामा

यह मकबूल की बहुचर्चित कृति है। इसमें एक कश्मीरी किसान की विभिन्न विवशताओं एवं मनोस्थितियों का व्यंग्य रूप में विश्लेषण मिलता है जो उसमें धर्मभीरुता, जहालत तथा अपढ़ता के कारण उत्पन्न होती हैं। मकबूलशाह ने ग्रीस्यनामा में बेचारे किसानों को जो खरी-खोटी सुनाई है उसके पीछे एक आधार है। एक बार मकबूलशाह अपने दो साथियों सहित किसी गांव में जा रहे थे। रास्ते में पानी बरसा। जैसे-तैसे 'छख' (स्थान-विशेष) पहुंचे। यहां इनके कोई

१- कुलियात मकबूल, पृ० ३० व पृ० ११७

परिचित शिष्य रहते थे। अतः उन्हीं के यहां रात भर रुकने का विचार किया। किन्तु किसी ने भी उनका स्वागत नहीं किया और न ही किसी ने रुकने के लिए कहा। बेचारों को सारी रात एक मसजिद में बितानी पड़ी। बस, तभी से उनका अन्तर किसानों के प्रति विद्रोह करने लगा। किसानों की अभद्रता और उजड्डता पर खुलकर फबतियां कसने लगे। कहीं-कहीं पर तो शिष्टता का उल्लंघन कर किसानों को धूर्त, दगाबाज़, निकम्मा आदि तक कहा। एक-आध जगह पर गालियां भी दी हैं। किसान झूठ बोलता है, कर्ज़ नहीं चुकाता, उसे हलाल और हराम में तमीज़ नहीं है, अशिष्ट है, स्वार्थी है, उसमें मानवता बिल्कुल नहीं है आदि बातें कवि ने किसानों के सम्बन्ध में कही हैं। इस मसनवी के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं :—

न ज़ानन ह्क न पैगंबर न पीरी,
युहुय अईनअ छुख त खाम सीरी,
न ज़ानन दीन नय इस्लाम दह्कान,
न छख ॖइनसानियत, अकसर छि ह्यवान,
छि शैतानस तिदिचमअच ग्रीस्यतिय वअज़,
सरासर नस्ल़ शैतान असिल खनास।

ये किसान न तो पैगम्बरों को जानते हैं और न ही पीरों को। इनके लिए आईना और कच्ची ईंट बराबर है। न धर्म और दीन को समझते हैं और न ही इनमें इन्सानियत है। शैतान तक को किसान ने मात दी है, ये मूलतः शैतान की औलाद हैं।

ग्रीस्यनामा का एक-एक छंद कवि के विक्षुब्ध हृदय से निकला उत्पीड़न है जिसमें किसानों को कभी माफ न करने का क्षोभ समाहित है। गुलरेज़ के कवि में जो भावप्रवणता मिलती है वह ग्रीस्यनामा में कटुता और आक्रोश में परिणत हो गई है। ग्रीस्यनामा लिखकर मकबूल ने तत्कालीन किसान-समाज का चित्र हमारे सामने रखा है। उस समय की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति इतनी विपन्न हो चुकी थी कि बेचारा किसान गर्हित कार्य करने पर बाध्य हो गया था। कवि ने इन दीन-हीन किसानों की स्थिति का वर्णन कर अप्रत्यक्ष रूप से उनके प्रति सहानुभूति का परिचय दिया है। ग्रीस्यनामा की भाषा स्पष्ट, सरस तथा प्रांजल है। यथा स्थान मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है।

इस मसनवी का रचनाकाल सन् १८५२ ई० है। छंदों की संख्या एक हज़ार से ऊपर है।

मकबूलशाह ने मसनवियों के अतिरिक्त जो गज़लें, मनकबत और मर्सिया लिखी हैं उनमें कवि द्वारा व्यक्त स्वानुभूतियों की सहज संवेदनशीलता मूर्त हो उठी है। गज़लों में कोमल हृदय का स्पंदन है, मनकबतों में दीन याचना और मूक समर्पण है तथा मर्सियों में हृदय की व्यथा गायी गई है।

मकबूल की भाषा फारसी-निष्ठ है। उन्हों नें फारसी भाषा के अनेक शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त किये हैं, जिसके कारण उनकी भाषा कहीं-कहीं पर बोझिल सी बन गई है। अलंकारों व विभिन्न बिम्बों का संयोजन भी फारसी-साहित्य की परंपरा से प्रभावित है।

डोगरी कवि लाला रामधन

(उनके जीवन तथा कविता पर नया प्रकाश)

जगदीश चन्द्र साठे

डोगरी के प्राचीन कवि लाला रामधन के जीवन तथा कविता के बारे में हमारा ज्ञान बहुत कम है। डोगरी संस्था जम्मू के काव्य संकलन "जागो डुग्गर" में, जो लगभग १९५४ ई० में प्रकाशित हुआ, तथा जम्मू राज्य की कल्चरल अकादमी के संकलन "निहारिका" में, जो १९५९ ई० में छपा, लाला रामधन के सम्बन्ध में कुछ परिचय तथा कुछ एक कविताओं की श्री रामनाथ शास्त्री द्वारा उपलब्धि हुई थी।

"जागो डुग्गर" में रामधन को महाराजा रणवीर सिंह (१८५७-१८८५ ई०) का तथा 'निहारिका' में महाराजा प्रताप सिंह (१८८५-१९२५ ई०) का समकालीन कहा गया है। १९६८ में मुझे अखनूर के वयोवृद्ध पंडित सन्तराम जी बसनोत्रा से लाला रामधन के बारे में कुछ अन्य ज्ञातव्य सामग्री प्राप्त हुई, जिस से कवि के जीवन तथा कविता पर कुछ नया प्रकाश पड़ता है। इस से हमें यह भी पता चलता है कि रामधन गुलाबसिंह, रणवीर सिंह तथा प्रताप सिंह तीनों महाराजाओं के समकालीन थे।

पंडित सन्तराम जी के अनुसार लाला रामधन तीन भाई थे। उनके भाइयों

के नाम हरदयाल और गुरदयाल थे। रामधन तो तिल्ला बनाने का काम करते थे तथा हरदयाल सराफी का। गुरदयाल अर्ज़ीनवीस था।

कवि के रूप में लाला रामधन की ख्याति दूर दूर तक पहुँच चुकी थी। उन्हें बैठे-बैठे कविता करने का बड़ा मुहावरा था। एक बार पैशावर से उर्दू का कोई मुसलमान शायर उनसे मुकाबिला करने अखनूर तक आ पहुंचा था, और बहुत ही प्रभावित होकर लौटा था। इस बात से पता चलता है कि डोगरी, पंजाबी और ब्रज के अलावा लाला रामधन उर्दू के भी एक सफल और ख्याति-प्राप्त कवि रहे होंगे।

लाला रामधन का जीवन बड़ा सादा और साधारण सा था। गरीबी होते हुए भी उनमें डोगरा जीवन के अनुकूल स्वाभिमान प्रयाप्त था। इसी सम्बन्ध में उनका बहुत ही सुन्दर शेर पंडित सन्तराम जी से प्राप्त हुआ है जो इस प्रकार है :—

रामधना के मंगना कुसै कोला,
मरी जाना कन्ने संदोख चंगा।

रामधन की एक प्रसिद्ध कविता जो 'निहारिका' में संग्रहित है, उसका भी एक रूपान्तर उपलब्ध हुआ है। इस रूपान्तर का होना इस बात की ओर निर्देश करता है कि कवि की यह कविता अत्यन्त लोकप्रिय होकर लोकवाणी के विभिन्न रूप धारण कर निकली थी। इसके बोल हैं :—

आपूं जागता होर ब्या कराग्निआं,
फूकी शोड़ नाड़िआ परांदिआगी।
कंदे दे ले चढ़ी चढ़ी पौंदे,
लिब्दिया पोचदिआ कोल्लिआगी।

लाला रामधन की एक अन्य कविता जम्मू के महाराजा रणवीर सिंह के प्रति है, जो इस प्रकार है :—

रामधन, राजा रणबीर सिंह राज करदा,
मानो बिक्रमाजीत अवतार है जी।

माता वाहू वाली तविया पार है जी,
जिसी सिमरदा सारा संसार है जी।
शक्के दुश्मनें दे करदी चूर आइऐ,
ते राज अटल रौंदा महाराज दा जी।

महाराजा रणवीर सिंह का राज्यकाल सन् १८५७ ई० से लेकर १८८५ तक रहा। चूंकि लाला रामधन ने अपनी इस कविता में महाराजा रणवीर सिंह का वर्तमान-काल में उल्लेख किया है, इस से हमें यह भी ज्ञान होता है कि उनकी कविता करने का काल महाराज प्रतापसिंह से पूर्व महाराजा रणवीर सिंह के काल में अवश्य था। इस प्रकार लाला रामधन की कविता साधना काफी पुरानी थी। पंडित सन्तराम जी के अनुसार लाला रामधन का देहान्त सन् १८९८ के लगभग हुआ था। इस कविता के आधार पर लाला रामधन को हम कवि गंगाराम का ही समकालीन कह सकते हैं।

परन्तु सन् १८९८ में जब लाला रामधन का निधन हुआ और १८५७ में जब महाराजा रणवीर सिंह गद्दी पर बैठे, केवल ४१ वर्षों का अंतर है। यदि इस में कम से कम २५ वर्ष ओर जोड़ दिए जाएं तो लाला रामधन की वृद्धावस्था को ध्यान में रखते हुए उनकी आयु का अनुमान ६५ वर्ष का किया जा सकता है। इस आयु के निश्चित करने से हमें यह अनुमान लगाने में सहायता मिलती है कि लाला रामधन ने कविता लिखना यदि युवाकाल से ही शुरू कर लिया हो तो वह निःशंक महाराजा गुलाब सिंह के राज्यकाल में पड़ता है। इस प्रकार लाला रामधन का काव्यकाल गुलाब सिंह, रणवीर सिंह तथा प्रताप सिंह तीनों महाराजाओं के राज्यकालों में पड़ता है और हम कह सकते हैं कि रामधन उन्नीसवीं ईसवी सदी के उत्तरार्ध के कवि थे।

पंडित सन्तराम जी से यह भो ज्ञान हुआ है कि लाला रामधन ने बहुत कविताएं लिखी थीं। उनकी मुख्य रचनाओं में रामायण, देवका महातम, चन्द्रभागा महातम और पूरण भगत थीं। यह सभी उच्च कोटि की तथा लोक प्रिय कविताएं थीं। एक अन्य रचना रामायण बारामासा थी। लाला रामधन अपने इन काव्यों पर आधारित कथावाचन अखनूर में पक्का डंगा नाम के स्थान पर किया करते थे। इनमें स्त्रियां, पुरुष और बच्चे सभी शामिल होते थे। यह कार्यक्रम बहुत ही सुन्दर होते थे और लोग उनमें बड़ा रस लेते थे।

जिस समय पंडित सन्तराम जी ने अपने शैशव काल में लाला रामधन को वृद्धावस्था में देखा था, उन्हें उस्ताद रामधन कह कर पुकारा जाता था। कवि की मृत्यु कोई सत्तर वर्ष पूर्व अखनूर मे ही हुई थी। पंडित सन्तराम जी उस शवयात्रा में सम्मिलित थे। जब शव का अग्निदाह हुआ तो एक बहुत ही विचित्र और बहुचर्चित घटना देखने में आई कि चिता में से एक लाट आतशबाज़ी के समान आकाश की ओर निकल गई। इस से देह संस्कार के लिए एकत्रित जनसमुदाय में सब लोग बहुत ही हैरान हुए।

डोगरी लोक गीत

भाग

एक

दो

तीन

और

चार

जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी, जम्मू।

खड़ी बोली, उद्गम एवं विकास

डा० जवाहर लाल हण्डू

हिन्दी के जिस रूप को आज राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, वह व्रज-अवधी, राजस्थानी तथा अन्य भाषाओं से भिन्न 'खड़ीबोली' हिन्दी है। यद्यपि अब यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा चुका है, कि दिल्ली-मेरठ की प्रान्तीय भाषा (खड़ीबोली) के आधार पर ही, वर्तमान राष्ट्र-भाषा का विकास हुआ है, परन्तु इस शब्द का प्रयोग, सर्वप्रथम लल्लू जी लाल के 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र कृत 'नासकेतोपाख्यान' एवं 'रामचरित्र' में मिलता है। दोनों गद्य-प्रबंध, 'फोर्ट विलियम कालेज' में हिन्दुस्तानी के अध्यक्ष डा० गिलक्राइस्ट के आदेश से लिखे गये थे। लल्लू जी लाल तथा सदल मिश्र अपने ग्रन्थों की भूमिकाओं में लिखते हैं :—

(१) "श्रीयुत गुनगाहक गुनियक सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में लल्लू जी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्त्र अवदोच आगरे वाले ने विस का सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ीबोली में कह नाम प्रेमसागर धरा[१]।"

(२) "जब इस पोथी की भाषा करने का कारण सिद्ध है कि मिस्टर जान गिलक्रस्त साहब ने ठहराया और एक दिन आज्ञा दी कि आद्यात्म

१ श्री लल्लूजी लाल : प्रेमसागर (हिन्दुस्तानी प्रेस कलकत्ता सं० १९०५) पृ० १

रामायण को ऐसी बोली में करो जिसमें अरबी फारसी न आवे। तब मैं इसको खड़ी बोली में कहने लगा और संवत् १८६२ में इस पोथा को समाप्त किया और नाम इसका रामचरित्र रखा[१]।"

इसके पश्चात् श्री गिलक्राइस्ट ने स्वयं "द हिन्दी स्टोरी टेलर" तथा अन्य ग्रन्थों में "खड़ी बोली" शब्द का प्रयोग किया[२]।

"प्रेमसागर" से पहले किसी अन्य गद्य-पद्य ग्रन्थ अथवा ऐतिहासिक पुस्तक में "खड़ीबोली" शब्द का उल्लेख नहीं मिलता[३]। स्वयं डा० गिलक्राइस्ट इस शब्द से अपरिचित थे। संभवतः इसी लिए उनके, "प्रेमसागर" से पूर्व रचित ग्रन्थ "ओरिएण्टल लिंग्विस्ट" (१७९८ ई०) में "हिन्दवी" शब्द का ही प्रयोग मिलता है,[४] जिस से उन का तात्पर्य भारत की उस प्राचीन भाषा से है, जो मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व, देश की भाषा थी।[५]

"खड़ीबोली" की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। श्री ग्रियर्सन इसकी उत्पत्ति के विषय में लिखते हैं, यह हिन्दी भाषा के उद्भव का समय था, जिसे अंग्रेज़ो ने आविष्कृत किया और गद्य-साहित्य में इसका प्रयोग, गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में सर्वप्रथम १९०३ में "प्रेमसागर" के रचयिता लल्लू जी लाल ने किया[६]। डा० अब्दुल हक् का विश्वास है कि, फोर्ट विलियम कालेज के 'मुन्शियों'

---

१ श्री सदल मिश्र : नासकेतोपाख्यान, पृ० २

२ Dr J. B Gilchrist : The Hindee Story Teller, Vol. II, p. 2. (Calcutta, 1803)

३ डा० आशा गुप्त : खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना (दिल्ली, १९६१) पृ० ३

४ Oriental Linguistic, (Calcutta, 1798) p 3.

५ "Hinduwee I have constantly applied to the old language of India which prevailed before the Moosalman invasion".

६ "It was the period of the birth of Hindi language, invented by the English and first used as a vehicle of literary prose composition in 1803, under Gilchrist's tuition by Lalloji Lal, the author of the Prem Sagar".

Grieson : The Modern Vernacular Literature of Hindustani" (London 1889), p. 22

ने (खुदा उनकी अरवाह को शरमाए) बैठे बिठाए बिला वजह और बग़ैर ज़रूरत यह शोशा छोड़ा। लल्लूजी लाल ने जो उर्दू के ज़बांदां और उर्दू किताबों के मुसन्निफ भी थे, इसकी बिना डाली। इस तरह कि उर्दू की बाज़ किताबें लेकर उन्होंने उनमें से अरबी-फारसी लफ़्ज़ चुन-चुन कर अलग निकाल दिए और उनकी जगह संस्कृत और हिन्दी के नामामूस लफ़्ज़ जमा किए, लीजिए हिन्दी बन गई[1]।

इसी प्रकार हिन्दी-भाषा तथा साहित्य के अनेक मर्मज्ञ विद्वानों में भी खड़ीबोली की उत्पत्ति एवं स्वरूप के विषय में भ्रम फैल गया। सभी नें अपनी धारणा के अनुकूल इस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया। यहां कुछ विशेष मत उद्धृत किए जाते हैं :—

(१) "जो भाषा आजकल खड़ीबोली नाम से कही जाती है, वह हमारी समझ में उर्दू का ही रूपान्तर है। आरम्भ में तो वह उर्दू भाषा में 'भाखा' के प्रचलित शब्द पर बनाई गई और फिर शनैः शनैः संस्कृत के शब्द मिलाए जाने लगे।
—जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'।[2]

(२) उर्दू रचना में फारसी-अरबी तत्सम या तद्भवों को निकाल कर संस्कृत या हिन्दी के तत्सम और तद्भव रखने से ही हिन्दी बना ली गई। विदेशी मुसलमानों ने आगरे, दिल्ली, सहारनपुर, मेरठ की खड़ीबोली को खड़ी बताकर लश्कर और समाज के लिए उपयोगी बनाया।
—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी[3]

(३) "फारसी" में ही कुछ ब्रज और बांगरू की टेक लगा, बोली को खड़ी कर दिया गया और उसका नाम खड़ीबोली पड़ गया।
—लाला भगवान दीन।[4]

---

१ डा० अब्दुलहक : अंजुमने तरक्की-ए-उर्दू (औरंगाबाद, १९३७) पृ० ३८३

२ डा० शितिकंठ मिश्र : खड़ीबोली का आन्दोलन, (काशी, सं० २०१३)

३ खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना, पृ० ४

४ डा० विनयमोहन शर्मा : खड़ीबोली हिन्दी और पंजाब में इसका व्यवहृत रूप, (पटियाला, १९६३-६४) पृ० ११

(४) "शौरसेनी, अर्धमागधी, पंजाबी और पेशाची के गड़बड़ अंशों से उत्पन्न भाषा को खड़ी बोली कहते हैं।" —बदरी नाथ भट्ट[1]

(५) वर्तमान हिन्दी-भाषा की जन्मभूमि दिल्ली है। वहीं ब्रज-भाषा से यह उत्पन्न हुई और वहीं इसका नाम हिन्दी रखा गया। —बालमुकुन्द गुप्त[2]

उपर्युक्त सभी मतों की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होगा कि यही सभी मत वैज्ञानिक एवं अपूर्ण हैं। श्री गुलेरी तथा जगन्नाथ दास जी रत्नाकर खड़ी-बोली की उत्पत्ति उर्दू से मानते हैं, जो सर्वथा भ्रामक है। "हिन्दुस्तानी" के उर्दू रूप का १७वीं शताब्दी के पूर्व कोई अस्तित्व ही नहीं था[3]। वस्तुतः उर्दू-भाषा उस हिन्दी या "भाखा" की शाखा है जो सदियों तक दिल्ली और मेरठ के आस पास बोली जाती थी, और जिसका सीधा सम्बन्ध शोरसेनी-प्राकृत से है। इसी प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन करने पर, बाल मुकुन्द गुप्त का यह मत, कि खड़ीबोली ब्रज-भाषा से व्युत्पत्त है, निराधार सिद्ध होता है। ब्रज-भाषा और खड़ीबोली में सामान्यतः मुख्य अंतर क्रमशः संज्ञा तथा विशेषण शब्दों का अकारान्त तथा आकारान्त रूप है। यद्यपि दोनों का उदय पश्चिमी हिन्दी से हुआ है, तो भी खड़ीबोली का आविर्भाव ११वीं सदी में उत्तरी मध्यदेश में हुआ, जबकि ब्रज-भाषा मध्यदेश की बोली से उदित हुई है। इन दोनों भाषाओं के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करने पर भी यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तानी खड़ी ही वह भाषा थी, जिसका साहित्यिक-भाषा के रूप में सबसे पहले विकास हुआ। १६वीं सदी के पूर्व ब्रज का इतिहास तो शंकास्पद है ही। इसी प्रकार खड़ीबोली में फारसी शब्दावली की प्रचुरता भी उसकी एक नई शैली उर्दू की विशेषता है। बाँगरू, खड़ीबोली का ही एक उपभेद है अतः उससे प्रभावित रहना प्रायः स्वभाविक ही है।

ग्रियर्सन ने खड़ी बोली को अंग्रेज़ों द्वारा गढ़ी हुई एक भाषा प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है, जो खड़ीबोली के प्राचीनतम् उपलब्ध साहित्य को देखने पर स्वतः निराधार सिद्ध होता है। यद्यपि लल्लूजी लाल से पूर्व 'खड़ीबोली' शब्द

१ खड़ीबोली हिन्दी और पंजाब में उसका व्यवहृत रूप, पृ० ११
२ बालमुकुन्द गुप्त : हिन्दी भाषा (कलकत्ता सं० १९६४) भूमिका (क)
३ खड़ीबोली हिन्दी और पंजाब में उसका व्यवहृत रूप, पृ० १३

का प्रयोग कहीं नहीं हुआ था, परन्तु यह धारणा कि लल्लूजी लाल ने ही अंग्रेज़ों के सहयोग से इस भाषा का निर्माण किया, सर्वथा भ्रामक है। "हिन्दवी", "हिन्दुस्तानी" के रूप में वस्तुतः 'खड़ीबोली' ही बहुत पहले से दिल्ली-मेरठ के विशेष क्षेत्रों में जन-भाषा के रूप में प्रचलित थी। मौखिक साहित्य का सृजन इसमें बहुत पहले से होता रहा था, और १३वीं शती के आस-पास शिष्ट साहित्य में भी इसका प्रयोग होने लगा था।

वस्तुतः शौरसेनी-अपभ्रंश प्रसूत पश्चिमी हिन्दी के मेरठ-बिजनौर के निकट बोले जाने वाले एक रूपक 'खड़ीबोली' से वर्तमान साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। भारत वर्ष में आने पर, बहुत दिनों तक मुसलमानों का केन्द्र दिल्ली रही, अतः फारसी, तुर्की और अरबी बोलने वाले मुसलमानों ने जनता से बातचीत और व्यवहार करने के लिए धीरे-धीरे दिल्ली के अड़ोस-पड़ोस की बोली सीखी। इस बोली में अपने विदेशी शब्दसमूह को स्वतंत्रता पूर्वक मिला लेना इनके लिए स्वाभाविक था। शाही दरबार से सम्पर्क में आने वाले हिन्दुओं का इसे अपनाना भी स्वभाविक ही था, क्योंकि फारसी-अरबी शब्दों से मिश्रित, किन्तु अपने देश की एक बोली में, इन विभिन्न भाषा-भाषी विदेशियों से बातचीत करने में इन्हें सुविधा रहती होगी। शासकों द्वारा अपनाए जाने के कारण यह उत्तर भारत के समस्त विशिष्ट समुदाय की भाषा मानी जाने लगी। उर्दू का जन्म तथा प्रचार भी इसी प्रकार हुआ। उर्दू का मूलाधार दिल्ली के निकट की खड़ी बोली है। यही बोली आधुनिक साहित्यिक-हिन्दी की भी मूलाधार है। अतः जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक-हिन्दी सगी बहनें हैं[१]।

---

१ (क) डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, (इलाहाबाद, १९३३) पृ० ५६, ६१, ६२

(ख) "Western Apabhransa was something like Hindustani, in those days it created everywhere mixed literary dialects on its own basis with local elements which were unavoidable . it fell also on Hindustani (Hindi) when it came to be characterised at first at Delhi and then in the Deccan The nobles at Delhi and Agra spoke on old form of Hindustani-khari Boli mingled with contiguous dialects Panjabi, Braj, Jaipuri, Marwari, and with a fairly large Persian Arabic Vocabulary."

Dr. S, K, Chatterjee : Indo-Aryan and Hindi (Calcutta 1942 p.p. 175, 179.

प्रश्न हो सकता है कि आखिर अन्य प्रचलित नामों–हिन्दुस्तानी, हिन्दवी, हिन्दुई, मूर्स आदि को छोड़, "खड़ीबोली" ही इस भाषा का नामकरण क्यों हुआ? इसकी एक ही सम्भावना है। डा० गिलक्राइस्ट द्वारा निर्धारित हिन्दुस्तानी की विभिन्न शैलियों तथा उनके प्रचलित रूढ़ नामों ने लल्लूजी लाल को "प्रेमसागर" की भाषा को नवीन नाम देने पर बाध्य किया[१]। जैसा कि कहा गया, इससे पूर्व "हिन्दवी", "हिन्दुस्तानी". "रेखता", "दक्खनी", "हिन्दुई" तथा "मूर्स" नाम भी प्रचलित थे। परन्तु परिनिष्ठत बोली का गौरव मिलने से "खड़ीबोली" साहित्य के लिए नहीं तो बोलचाल के लिए सर्वश्रेष्ठ भारतीय बोली हो गई, और इसे "खड़ीबोली" या "परिनिष्ठित बोली" नाम मिला, जबकि बोलचाल की बोलियां तथा साहित्यिक बोलियां पड़ी बोलियां या गिरी बोली कही जाने लगीं[२]।

"खड़ीबोली के क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में भी भाषाविद एकमत नहीं हैं।

डा० ग्रियर्सन के अनुसार 'हिन्दुस्तानी'[३] भाषा का क्षेत्र, व्यापक रूप में, अम्बाला, रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, गंगा के पूर्वी भाग, पश्चिमी

---

१ खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना, पृ० १२-१३

२ In the later times the connexion with the Delhi court gave it the prestige of a standard speech—the Indian speech par-excellance for conversation if not for literature and it acquired the name of "Khari Boli" or "Standard speech", the other forms of spoken dialects and literary speeches too coming to be known as "Pari Boli" or "fallen speech".

Dr. S K. Chatterjee : Languages and Linguistic Problems, p. 16.

३ ग्रियर्सन : "खडीबोली" के स्थान पर हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग अधिक अनुकूल समझते हैं – यथा :

"Khari-Boli : A name given to Braj Bhasha in the east of Agra district (U.P.) also a common name for Hindustani." Grierson : Index of Language Names, (Calcutta, 1920) Remarks Colm.

शीसाजा

रुहेलखंड, मेरठ, मुज़फ्फर नगर, सहारनपुर एवं देहरादून[१] है। श्री चाटुर्ज्या ने खड़ीबोली के क्षेत्र में, पश्चिमी उत्तरप्रदेश, पूर्वी पंजाब के क्रमशः रुहेलखण्ड एवं मेरठ डिविज़न तथा अम्बाला ज़िला, करनाल, रोहतक के कुछ भाग, पैप्सू, जीन्द राज्य के कुछ भाग तथा दिल्ली आदि स्थान सम्मिलित किए हैं[२]। डा० श्यामसुन्दर दास ने भी खड़ीबोली का मूल अर्थ लेते हुए, रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ्फर नगर, सहारन पुर, देहरादून, अम्बाला, कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भाग में बोली जाने वाली बोली को खड़ीबोली कहा है[३]। डा० धीरेन्द्र वर्मा को इस सम्बन्ध में, श्री ग्रियर्सन का उक्त मत ही मान्य है। उनके अनुसार रामपुर रियासत, देहरादून, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ्फरनगर, सहारनपुर, अम्बाला तथा कलसिया एवं पटियाला रियासत का पूर्वी भाग खड़ी बोली का क्षेत्र है[४]। राहुल सांकृत्यायन, 'आदि-हिन्दी' का क्षेत्र[५], सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ के पूरे तीन ज़िले एवं बुलंदशहर की सिकंदराबाद तहसील तथा बिजनौर के कुछ गांव मानते हैं।[६]

---

१ "Literary Hindustani that took its rise in Delhi is based on the language of the state of Rampur and of the district of Muradabad and Bijnaur, east of the Ganges and in the Western Rohilkhand the district of Meerut, Muzzaffar Nagar, Saharanpur and plain portion of Dehradun."

Linguistic Survey of India, Part 2, Vol. IX, p. 63.

२ भारतीय - आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १८०

३ भाषा विज्ञान (प्रयाग, १९५४) पृ० १०६

४ (क) हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० ६५

(ख) डा० उदय नारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, (प्रयाग सं० २०१२) पृ० २३० ।

(ग) खड़ीबोली हिन्दी और पंजाब में उसका व्यवहृत रूप, पृ० २१ ।

५ आदि-हिन्दी की कहानियां और गीत, (पटना, १९५१) भूमिका ।

६ वही ।

वस्तुत: क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में उद्धृत उपर्युक्त मतों को दृष्टि में रख कर, यह निभ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि खड़ीबोली की भाषा-सीमाएं जिस रूप में ग्रियर्सन द्वारा निर्धारित की गई हैं, सभी भारतीय भाषाविद् किंचित अंतर के साथ प्राय: उसी का अनुकरण करते आ रहे हैं। वास्तव में, इस दिशा में, एक 'नए सर्वेक्षण' की आवश्यकता है। खड़ीबोली की भौगोलिक स्थिति से यह सहज ही ज्ञात होता है कि इस का क्षेत्र, पश्चिमी हिन्दी के उत्तर-पश्चिमी कोने में है। इसके पश्चिम में पंजाबी, उत्तर में भारतीय आर्य-परिवार की पहाड़ी भाषाएं (जिनका सम्बन्ध राजस्थानी से है) तथा दक्षिण एवं पूर्व में ब्रज-भाषा का क्षेत्र है[1]। वस्तुत: मेरठ, सहारनपुर, मुज़फ्फर नगर, बिजनौर तथा दिल्ली के कुछ भागों में खड़ीबोली का परिनिष्ठित रूप प्रचलित है। देहरादून, हरिद्वार के समतल भागों में वह पहाड़ी आर्य-भाषाओं से प्रभावित है। अम्बाला तथा पटियाला-कलसिया की भाषा पंजाबी से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण संदिग्ध रूप में प्रचलित है। इसी प्रकार करनाल तथा यमुना के पश्चिमी निकटवर्ती क्षेत्रों में इस पर बांगरू आदि का अधिक प्रभाव है। मुरादाबाद, रामपुर तथा बुलंदशहर में व्यवहृत भाषा खड़ीबोली एवं ब्रज का अद्भुत संमिश्रण है। वस्तुत: गंगा और यमुना के मध्य का क्षेत्र ही, ठेठ खड़ीबोली का क्षेत्र है[2]।

खड़ी बोली एक प्राचीन भारतीय भाषा है। यद्यपि "खड़ीबोली" शब्द का प्रयोग गत शताब्दी में सर्वप्रथम श्री लल्लूजी लाल ने "प्रेमसागर" में किया, परन्तु इसका स्वतंत्र अस्तित्व, अन्य आधुनिक आर्य-भाषाओं की भांति, प्राकृताभास अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध है। खड़ीबोली के प्रारंभिक स्वरूप के लक्षण सिद्धों एवं नाथपंतियों[3] की रचनाओं में मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से जैन-साहित्य

---

१ भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी, पृ० १७६।

२ द्रष्टव्य : 'मानचित्र" : "कश्मीरी तथा खड़ीबोली 'हिन्दी' के लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन" (अप्रकाशित)।

३ (क) नाथों का समय ११वीं शती माना गया है। गोरखनाथ का एक पद द्रष्टव्य है। इसमें खड़ीबोली के शब्दों का स्वतंत्र प्रयोग हुआ है :—

नाथ कहता सब जग नाथ्या गोरख कहता गोई।
कलमा का गुरु महमद होता पहले मूवा सोई।

डा० पीताम्बर बड्थ्वाल : गोरखबानी, पृ० ५।

(ख) नाथ निरंजन आरती गाऊं। गुरदयाल आग्या जो पाऊं॥—वही, पृ० ६

भी महत्वपूर्ण है। "गुलेरी" जी ने इसे "पुरानी हिन्दी" कहा है। इस में समस्त उत्तर-भारतीय भाषाओं के प्रयोग मिलते हैं। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में भी खड़ीबोली के प्रारम्भिक प्रयोग दृष्टिगत हैं[४]। खड़ीबोली काव्य का महान स्रष्टा तुर्क कवि अमीर खुसरो (सं० १३१२-१३८१) का नाम चिरस्मरणीय है। उनके फुटकर गीतों, पहेलियों तथा मुकरियों में प्रारंभिक खड़ीबोली के अत्यंत समृद्ध प्रयोग हुए हैं[५]। खुसरो के बाद खड़ी बोली दक्खनी कवियों द्वारा अत्यंत समृद्ध एवं विकसित हुई। मुहम्मद तुग़लक की सनक के कारण जब दिल्ली की जनता को दक्षिण भागना पड़ा तो उनकी बोलचाल की भाषा रेखता (खड़ीबोली) भी दक्षिण पहुँची जहां वह "दक्खनी" कहलाई। फलतः वहां १४वीं से १६वीं शताब्दी तक "दक्खनी" अथवा "हिन्दवी" नाम से अभिहित भाषा में जो साहित्य रचना हुई, वह दिल्ली मेरठ की स्थानीय बोली का ही विकसित रूप थी[६]। गवासी, वजही, इवन निशाती, बुहोनुद्दीन, सनाती, नसरती, आदि शायरों ने जो काव्य-रचना की उसमें खड़ीबोली का रूप निखर उठा[७]। इसी प्रकार संत-काव्य[८] सूफी-

---

४ भला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कुन्त।
लज्जेजंतु वयंसि जहु जई भाग्गा घरु एंतु ॥—प्राकृत व्याकरण, पृ० १५०।

५ (क) गोरी सोवे सेज पे मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुं देस॥

ब्रजरत्नदास : खुसरो की हिन्दी कविता (काशी, स० २०१०) पृ० ३०।

(ख) टूटी, टूटके धूप में पड़ी, जों जों सूखी हुई बड़ी।—वही, पृ० ३५।

(ग) सर पर जाली, पेट से खाली, पसली देख एक एक निराली।—वही, पृ० ५१।

६ खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना, पृ० ४५।

७ "दक्खनी" हिन्दी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(क) कहे शाह मां-बाप कूं, फिर यो बात। के मै दिल के हात में,
....न दिल मेरे हात। (वजही) वही।

(ख) अजब रात निर्मल थी, उस दिन की रात।
झमकते थे नूरा मं लंक घात घात॥—(गवासी):— वही।

८ सुन हो तुम्ह सिद्धान्त गुरुआ, सारा ज्ञान पधुथ हमारा। (दामोदर पंडित)
डा० विनयमोहन शर्मा : हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ० ८६।

काव्य[६], भक्तिकालीन काव्य, रीतिकालीन कविता तथा भारतेन्दु युग की पद्य एवं गद्य रचनाओं में खड़ीबोली निरंतर विकसित होती हुई एक शुद्ध एवं परिष्कृत साहित्यिक भाषा के रूप में अवतरित हुई, जिसका वर्तमान रूप चरमोत्कर्ष पर पहुँचा है।

---

६ बिना बन्दगी इस आलम में खाना मुझे हराम है रे।
बन्दा करे सोई बन्दगी, खिदमत में आठों जाम है रे॥ (यारी साहब)
खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना, पृ० ५०।

शीराजा

पुरमण्डल

सूरज सराफ

भारत के जन जीवन में धार्मिक पर्वों तथा तीर्थों का स्थान सदा से महत्व-पूर्ण रहा है। इन पवित्र स्थानों पर स्नान कर अपने समस्त पाप धो डालने की उत्कट अभिलाषा लोगों में कितनी होती है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव पुरमण्डल के पुण्य तीर्थ पर प्रतिवर्ष शिवरात्री, चैत्र चतुर्दशी-वैशाखी तथा अन्य अवसरों पर देखने से होता है।

शिवालिक गिरिमाला में एक सुरम्य स्थल पर स्थित यह पावन तीर्थ जम्मू से १६ मील उत्तर में है। सांझ सवेरे पाप हरिणी देविका के तट पर बने विशाल शिवमन्दिर के घंटों की सुमधुर ध्वनियां पर्वतों की गहन शान्ति को भेदती हुई यात्रियों को भगवद् भक्ति का संदेश देती जान पड़ती हैं। धार्मिकता से ओत-प्रोत वातावरण में पहुँच कर व्यक्ति का मन अपूर्व शान्ति का अनुभव करता है।

पुरमण्डल के सम्बन्ध में कहा जाता है कि कश्यप ऋषि की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर महादेव जी ने पापियों के उद्धार के निमित्त पार्वती जी को जलधारा के रूप में प्रवाहित होने को कहा। अतः पार्वती जी जलधारा का रूप ग्रहण कर सुद्धमहादेव नामक स्थान से प्रवाहित हो कर पुरमण्डल पहुँचीं। यहां पर स्वयं आशुतोष भी पाषाण सरीसृप के रूप में देविका के तट पर प्रकट हुये। इस स्थान

के अतिरिक्त देविका के किनारे २ कई अन्य स्थलों पर भी महादेव जी प्रकट हुये। आज भी उन स्थानों पर उनके चिन्ह वर्तमान हैं।

यहां पर आने वाले श्रद्धालु भूमि के भीतर प्रवाहित हो रही देविका में स्नान करने के लिये बालु में बड़े-बड़े गढ़े खोदते हैं और भीतर से जल निकलने पर स्नान करते है और कुछ जल शंकर जी की प्रतिमा पर चढ़ाने के लिये मन्दिर में भी ले जाते हैं। यहां लोग पितरों को पिण्डदान भी करते हैं। मृतकों की अस्थियां भी देविका में विसर्जित की जाती हैं।

पुरमण्डल का विशाल शिव मन्दिर देविका के किनारे एक बहुत बड़ी चट्टान पर बना हुआ है। यहां पर निर्मित अन्य मन्दिरों में से यह मन्दिर प्राचीनतम है। इस देवालय के मध्य में शिवजी का प्रतीक वह पाषाण सर्प है जिसके सम्बन्ध में ऊपर बताया जा चुका है। यह कृष्ण वर्ण प्रस्तर नाग एक छोटे से गढ़हे के भीतर से निकला हुआ है। इस गढ़हे में एक विचित्रता है कि चाहे इसमें कितना भी जल क्यूं न डाला जाय यह आधे से अधिक नहीं भरता।

इस चिरकालीन देवालय के इर्द-गिर्द उन्नीसवीं शताब्दी में महाराजा गुलाब सिंह तथा महाराजा रणवीर सिंह ने अनेक अन्य मन्दिरों तथा मण्डपों का निर्माण करवाया।

महाराजा रणवीर सिंह बड़े धार्मिक विचारों के तथा कलाप्रिय व्यक्ति थे। उनका विचार पुरमण्डल के समीप एक ऐसा अनुपम तीर्थ बनवाने का था कि जहां पर स्नान करने से भारत के समस्त तीर्थों का महात्म्य प्राप्त हो सके। महाराजा को विद्वानों ने बताया था कि पुराणों के अनुसार देविका में अवगाहन करने का महात्म्य गंगा से भी अधिक है, इसी कारण उन्होंने यह योजना बनाई थी। उनके दरबार में अनेक सुविद् पण्डित रहते थे। उनकी सहायता से महाराजा ने देविका के किनारे किनारे पुरमण्डल से तीन मील नीचे तक बहुत से स्थान निर्धारित किये जहां पर स्नान करने से भारत के किसी न किसी तीर्थ का पुण्यलाभ प्राप्त होता था। इन सब स्थानों पर महाराजा ने मन्दिरों का निर्माण आरम्भ किया। किन्तु उनकी यह तीर्थ बनवाने की विलक्षण आकांक्षा पूर्ण न हो सकी। अभी यह कार्य अधूरा ही था कि उनका देहावसान हो गया। आज भी इस क्षेत्र में कई स्थलों पर कई अर्ध निर्मित मन्दिर खड़े दृष्टिगत होते

हैं, इन देवमन्दिरों के निर्माणार्थ लाई हुई सामग्री भी जहां तहां बिखरी दिखाई देती है।

यद्यपि महाराजा रणवीर सिंह की यह कामना पूर्ण न हो सकी तथापि पुरमण्डल में उनके तथा उनके दरबारियों द्वारा बनवाये गये विशाल भवनों में बने पहाड़ी चित्र शैली के सुन्दर कलात्मक भित्तिचित्र आज भी उनके कलाप्रेम का स्मरण दिलाते हैं। सैकड़ों की संख्या में बने इन अत्यधिक सुन्दर रंगीन चित्रों में राधा-कृष्ण तथा गोपियों की लीलाओं एवं नायक-नायिकाओं का चित्रण किया गया है। कलाप्रेमियों के लिये पुरमण्डल के यह भित्तिचित्र एक और आकर्षण की वस्तु है।

संस्कृत कवि चण्डीदास की जन्म-भूमि

पुण्डरीक पुर (पुण्डरी)

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' ●

परिचय की खोज :—संस्कृत के महान् पण्डित एवं कवि चण्डीदास ने अपनी रचना 'रघुनाथ गुणोदय' के प्रति सर्ग के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय "सवाल वंशावतंस दुर्गादत्तात्मज कुरुक्षेत्र मध्य रेखान्तर्गत पुण्डरीकपुर निवासी" के रूप में दिया है। पढ़ने के बाद इच्छा हुई कि इस पुण्डरीकपुर का पता लगाया जाये, जहां ऐसे महान् कवि का जन्म हुआ था। उक्त महाकाव्य की पाण्डुलिपि जम्मू के रघुनाथ मन्दिर के संस्कृत पुस्तकालय में मुझे देखने को मिली थी। कवि ने अपने परिचय के साथ महाराजा रणवीर सिंह (जम्मू कश्मीर नरेश सन् १८५७-८५) के साथ अपना राज-कवित्व भी जोड़ दिया है।

पहले तो कई मास बीत गए मुझे जम्मू शहर तथा आस-पास में पता लगाते ही कि सवाल जाति कोई यहां निवास कर रही है, किन्तु इस कार्य में मुझे सफलता नहीं मिली। ब्राह्मणों की कोई सवाल जाति यहां नहीं मिल पाई। इस खोज द्वारा मेरी दृढ़ धारणा हो चली कि कवि यहां नहीं बसा बल्कि राज दरबार से अवकाश पाकर कुरुक्षेत्र वर्ती पुण्डरीकपुर ही चला गया होगा। अब प्रश्न था कुरुक्षेत्र जाकर इस स्थान को ढूंड निकालने का जिससे कवि के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक उपलब्धियां मिल पातीं। अभी तक मुझे कवि की दो उपलब्ध रचनाओं का ही केवल मात्र ज्ञान था। रघुनाथ गुणोदय (अप्रकाशित) तथा

आन्हिक-पद्धति (प्रकाशित)। यही ज्ञान संस्कृत के अन्य विद्वानों को भी था। कवि क़ब हुआ, उसने और क्या क्या लिखा इत्यादि सब बातें अभी अंधकार में छिपी हुई थीं। गत १२५ वर्षों के पूर्व वर्ती इस संस्कृत कवि को जैसे कि संस्कृत समाज ने आंखों से अनदेखा ही कर रखा था। इस काव्य का पर्यालोचन करने के पश्चात् कवि के सम्बन्ध में खोज-बीन करने की मेरी प्रवृत्ति जागृत हुई। मैंने प्रथम कार्य यह किया कि रोहतक निवासी अपने एक मित्र श्री सोहनलाल शास्त्री को पत्र लिख कर अनुरोध किया कि वे सूचित करें कि पुण्डरीकपुर या इस का कोई तद्भव शब्द लिये हुये कस्बा या गांव हरियाणा के किसी भाग में है। पत्र का उत्तर बड़ा सन्तोष जनक रहा। उन्होंने लिखा—कैथल के १०-१२ मील की दूरी पर एक पुण्डरी नामक शहर है। बस फिर क्या था। मैंने अपना लक्ष्य पा लिया। अब केवल वहां पहुंच कर कवि के घर जाना था।

कुरुक्षेत्र होता हुआ मैं पुण्डरी पहुँचा। पठानकोट से दिल्ली होकर चलने वाली ट्रेन पर बैठ गया। अम्बाला जंक्शन से लुधियाना सरहिन्द तथा उसके आगे कुछ स्टेशन छोड़कर कुरुक्षेत्र जंक्शन पर गाड़ी रुकी और मैं वहां उतर गया। कुरुक्षेत्र से पूर्व की ओर एक रेल पथ ५० किलोमीटर पर स्थित कैथल शहर को जाता है। कैथल करनाल ज़िले के अन्तर्गत एक तहसील है। इसी से दस किलोमीटर की दूरी पर स्थित पुण्डरीक नामक एक देहाती कसबा है, वहां कैंथल से बस द्वारा जाया जाता है या करनाल से सीधे कैथल को आने वाली बस द्वारा आकर बीच में पुण्डरी पड़ाव पर उतर जाना पड़ता है।

पुण्डरी का परिचय :— यह एक पुराना नगर है, जिसमें पुरानी पक्की एवं गगन चुम्बी विशाल हवेलियां आज भी इसकी परम्परागत समृद्धि का परिचय दे रही हैं। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में इसका विशेष स्थान है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। महाभारतीय युद्ध के समय इस स्थान पर कौरव पाण्डवों की सेनाएं बैठाई गई थीं। एक प्रकार से पुण्डरी उस समय सेना शिविर रहा होगा। मुख्य प्रवेश द्वार के पश्चिम की ओर सर्पाकार वृहत् कुण्ड अब भी उस प्राचीनता का परिचय दे रहा है, जिसके पूर्वीय तट पर पुराने मन्दिरों की कतार और नीचे पक्का घाट दोनों दक्षिण की ओर दूर तक फैले हैं। पूर्वीय तट के सामने पश्चिमी किनारा है जिस पर लगभग दो सौ वर्ष पूर्व स्थापित किया हुआ महात्माओं का एक आश्रम है। परम्परा से इस आश्रम के महात्माओं की चमत्कारपूर्ण कहानियां सुनी जाती हैं। यहां के

महात्मा ब्रह्मबोध के विषय में सुना है कि उन्हें ऐसी सिद्धि प्राप्त थी कि वह जिसे सन्तान-प्राप्ति का वर दे देते उसके हां सन्तान अवश्य हो जाती। पुण्डरी सेठों का शहर रहा है। इस कारण इन महात्मा की प्रतिष्ठा इनती बढ़ी कि द. हज़ार रुपए (दक्षिणा के रूप में प्राप्त) इनके पास इकट्ठे हो गए।

पूर्वी तट के वासी वाना पुण्डरीपुरी के बारे में भी मैंने सुना कि उन्होंने अपनी पानी भरी लुटिया को उंडेल कर दिल्ली में लगी आग बुझा दी थी। उपर्युक्त आश्रम के महात्मा गिरि कहलाते हैं। इन्हीं में एक महेश्वरगिरि भी रहे होंगे, इनका एक पत्र, जो इन्हें किन्ही चन्द्रार्द्धचूड़ चन्द सहाय ने संस्कृत में लिखा था, मुझे मिला है।

इस पश्चिमी तट के कुछ दूर पीछे एक अन्य आश्रम मैंने देखा जो अब वीरान पड़ा है। यह ऊंचे स्थन पर स्थित होने के कारण "ऊंची टिव्वी आश्रम" कहलाता है। चारों ओर नींम तथा बट के पेड़ अब भी लहरा रहे हैं किन्तु जन-शून्य और भग्नावशेष के कारण इसकी सुनसान अब बढ़ी हुई है। इस आश्रम का विशेष इतिहास इसकी वीरान पड़ी हुई कन्दरा से जुड़ा हुआ है जो अब भी वैसी की वैसी दिखाई पड़ रही है। ऊंचे टीले पर स्थित इस प्राचीन आश्रम के उजाड़ और यत्र-तत्र उखड़ कर बिखरी पड़ी पुरानी ईंटें अब भी इस के इतिहास की कहानी कहती हुई दिखाई देती हैं। सामने एक नींव के पेड़ के साथ जुड़ा हुआ प्राचीन वट अपने मूल में अनेक झाड़ियों के जमघट को लिए अब भी शीतल छाया के साथ मस्ती से झूम रहा है। दूसरी ओर नींम का एक और जरठ पेड़ और तीसरे कोने में अन्य नींम का तरु आश्रम के चारों ओर मिल कर अपनी छाया बिखेर रहे हैं। बीच में धूनी रमाने की उच्च वेदिका और उसके नीचे थोड़ी सी ढलान पर समतल भूमि की वेदिका शायद उस युग में आगन्तुकों के लिए बैठने का स्थान बनाया हुआ होगा। इन दोनों स्थानों के आगे पुरानी ईंटों की बनी सीढ़ियां नीचे धरती की ओर गई हैं जहां उन की समाप्ति पर दस फुट लम्बा और पांच फुट चौड़ा समाधि स्थान बना हुआ है जो पुराने फर्श से आच्छादित है। गुफा का भीतरी भाग जीर्ण-शीर्ण और कंकड़-पत्थरों से अटा पड़ा है। अन्धकार अधिक होने के कारण नीचे जाते हुए साप बिच्छुओं का डर भी अनुभव होता है। दर्शनार्थी टार्च लेकर जाते हैं।

आश्रम के महत्व और प्राचीनता की जानकारी लेने के लिए मैंने स्थानीय श्री लक्ष्मी नारायण व्यास (आयु ८३ वर्ष) से पूछा तो उन्होंने बड़ी रोचक घटना

सुनाई। लगभग ११५ वर्ष पूर्व इस गुफा में एक योगाभ्यासी महात्मा रहते थे। दिन में आश्रम की वाह्य भूमि पर जब वह धूनी रमाते तो अनेक दर्शनार्थी वहां आकर बैठ जाते। किन्तु रात के नौ बजे बाद महात्मा जी के पास आने की किसी को आज्ञा नहीं थी। कवि चण्डीदास के भाई जयन्तीदास एक दिन रात को वहां पहुँचे परन्तु बाहर महात्मा जी नहीं थे। गुफा की सीढ़ियां ढल कर जब वह नीचे गए तो द्वार पर खड़े शेर ने उनका अभिनन्दन करना ही चाहा तो वे एकदम भागकर ऊपर चले आए। दूसरे दिन महाशय बीमार पड़े और महात्मा जी से क्षमा मांगने आए। उनकी कृपादृष्टि से स्वस्थ हो गए। पुनः जयन्तीदास ने महात्मा का शिष्य बनने की भारी इच्छा प्रकट की। बड़े प्रयत्न के बाद स्वामी जी ने जयन्तीदास से कहा—"बेटा आज मैं कुछ दिनों की समाधि ले रहा हूँ मेरे शरीर को जलाना नहीं।" कह कर स्वामी जी ने गुफा में बैठकर समाधि ले ली। किन्तु चार-पांच दिनों बाद पुण्डरी के लोगों ने शव का दाह-संस्कार कर दिया। जयन्तीदास ने कुछ नहीं कहा। दाह संस्कार के अनन्तर ही महात्मा की आत्मा ने पास के कसबे, फतेहपुर में उसी दिन मरे हुए एक जुलाहा मुसलमान के शरीर में प्रवेश कर लिया। जुलाहा उठकर जयन्तीदास के पास पहुँचा और उसे भला-बुरा कहने लगा –"तुमने शिष्यता का कार्य ईमानदारी से नहीं निभाया, जब कि मैं तुम्हें कह चुका था कि मेरे शरीर को सुरक्षित रखना। अच्छा जाओ तुम्हारे कुल में सन्तान नहीं होगी।" कहकर जुलाहा जंगल की ओर भाग गया तथा फिर कभी किसी ने उसे नहीं देखा।

शाप सत्य निकला। कवि चण्डीदास का कोई पुत्र नहीं था। शाप के पूर्व जयन्तीदास का एक लड़का था प्रभुदयाल, इसके बाद शेष दो तीन भाइयों के सन्तान नहीं हुई। प्रभुदयाल ने अपनी अधेड़ उम्र में, पास के पिलनी गांव का एक बालक गोद में लिया। जो अब ७८ वर्ष का (पं० मामराज) है। चतुर्थ विवाह से मामराज को दो पुत्र प्राप्त हुए हैं। वास्तव में कवि चण्डीदास सवाल का वर्तमान वंश-तन्तु बीच में टूट कर अतिरिक्त तन्तु से जुड़कर आगे बढ़ा है। अब मामराज के बड़े पुत्र नाथ राम के घर भी बालक सन्तान हुई है दूसरा लड़का बाल कृष्ण अभी अविवाहित है।

यह है पुण्डरी के सवाल वंशीय पं० कवि चण्डीदास के वंश की कहानी, जिस वंश ने इतना धुरन्धर विद्वान और कवि पैदा किया, शाप वश उसकी और सन्तान आगे नहीं बढ़ पाई किन्तु वंश परम्परा इस प्रकार दत्तक पुत्र लेकर आगे बढ़ी और विशाल जायदाद की अधिकारिणी बनी।

पुण्ड्रक तालाब के सम्बन्ध में जानने की मेरी प्रबल इच्छा देखकर व्यास जी ने सुनाया—"यह तालाब कौरव पाण्डवों के युग में उन्हीं द्वारा खोदा गया था। जब महाभारत युद्ध के लिए पाण्डवों के सैन्य शिविर पुण्डरी के मैदान में जम गए तो हाथी-घोड़ों तथा सेना के लिए विशाल जल भण्डार की आवश्यकता पड़ी। पूर्ती के लिए यह सरोवर खोदा गया था। इसका यह नाम इस लिए पड़ा कि इसके पूर्व, जहां पुण्ड्रक ऋषि का आश्रम था जो युद्ध के समय भी एक ओर बना रहा। उसी से इसका पुण्ड्रक नामकरण न मालूम कब से प्रचलित हो चुका था।

इस सम्बन्ध में दूसरी वार्ता करनाल निवासी पं० कमला नयन शास्त्री (आयु ८३ वर्ष) के श्री मुख से मैंने सुनी थी—पुण्ड्रक सफेद कमल या नाग को कहते हैं। इस सरोवर में सफेद कमल अधिक होने से कभी इसका यह नाम पड़ गया होगा या पुण्डरीक (नाग) के निवास करने के कारण भी इस का नाम पुण्डरीक पड़ गया होगा। देखने से सरोवर नाग की आकृति का लगता है। पूर्व की ओर उसकी फण जैसी विशालता दीखती है और पश्चिम की ओर सांप की दुम जैसी पतली रेखा। इसी कारण पुराणों में इसे 'नाग ह्रद' कहा गया है।

इन विश्लेषणों द्वारा मैं इस निष्कर्ष तक पहुँचा कि प्रस्तुत सरोवर पाण्डवों के समय खोदा गया होगा, इस में महाभारत युद्ध के पश्चात् श्वेत कमल अधिक उगने लगे होंगे तथा कोई नाग देवता भी बीच में रहता होगा। इन्हीं परिस्थितियों में इसका नाम पुण्ड्रक सर या नागह्रद पड़ा होगा। अब श्वेत-कमलों के स्थान पर पश्चिम भाग के सर्पाकार जलमय स्थान पर श्वेत बगुलों की लम्बी पांतियां श्वेत कमलों का आभास देती रहती हैं। मन्दिर तथा घाट सूने पड़े हैं। उन पर काशी, हरिद्वार आदि तीर्थों जैसी चम्रचौंधी तथा घण्टों का कलरव कहीं नहीं दीख पड़ेगा। सन्नाटा इतना है कि आगन्तुक की सांस घुटने लगती है। मुझे अश्चर्य हुआ कि इतने बड़े प्राचीन तथा पौराणिक तीर्थ को अब तीर्थ ही नहीं माना जा रहा है और साल भर में कोई भी धार्मिक पर्व-स्नान यहां सम्पन्न नहीं होता।

शहर :—जैसा कि ऊपर कहा ही जा चुका है कि प्रस्तुत नगर सेठों की निवास भूमि रहा है। इस कारण व्यापार का केन्द्र पीछे कभी रहा था। प्राचीन ऊंचे महलों को देख कर आश्चर्य होता है कि उन सेठों ने किस प्रकार भारी पूंजियां इस निर्माण कार्य में लगा दी थीं, जब कि उनका आर्थिक दृष्टि से कोई

शीराजा

विशेष लाभ न था। किराए का स्तर अब भी इतना नीचे है कि एक अच्छे परिवार के निवास योग्य मकान का किराया १०-१२ रुपये ही देना पड़ता है। मैंने देखा कि बहुत सी पुरानी हवेलियां खाली और विरान पड़ी हुई हैं। यदि किसी में एक आध परिवार रहता भी है तो शेष भाग घुटन भरे सूनेपन के व्यथित सांस ले रहे हैं।

आबादी विस्तार तथा जनसंख्या : पुण्डरी शहर का परिमाण लगभग एक मील लम्बा और आधा मील चौड़ा है। सड़कें कच्ची और खुर्दरी हैं जिन पर बैलगाड़ियां और रिक्शाएं चलती हुई धूल के अम्बार उड़ाती रहती हैं। जीवन अधिक शहरी नहीं है, बाज़ार पुराने तथा देहाती हैं। लोगों की पोशाकें भी इतनी उन्नत नहीं हैं तथा रहन-सहन भी सादा है। बिजली और पम्पिग नलों का प्रबन्ध अच्छा है। टांगों और टैक्सियों के स्थान पर अधिकतर बैल गाड़ियां प्रयोग में लाई जाती हैं। हरियानवी (बांगरू) इनकी मुख्य प्रयोग भाषा है। जनसंख्या ७,६,५६ और समग्र प्रदेश ६,७१२ एकड़ धरती पर आबाद है। पुण्डरी शहर में जन संख्या की दृष्टि से अग्रवाल सेठों की आबादी सर्वप्रथम है। दूसरे दर्जे पर ब्राह्मणों की आबादी है। व्यवसाय मुख्यत: खेती और दूसरे स्थान पर लेन-देन है। अब २०-२५ वर्षों के भीतर बड़े-बड़े व्यापारी तथा धनिक यहां से चल कर देश के विभिन्न बड़े शहरों मैं प्रतिष्ठित हो गए हैं। अब इस नगर की पिछली शान और महत्ता नहीं रही है फिर भी यहां से गए हुए व्यापारी कभी कभी विशाल पूंजी लगाकर यहां कुछ स्मारक तथा धर्मशाला जैसे निर्माण करा देते हैं। कुछ वर्ष पहले यहां के एक सेठ (जो अब दिल्ली शहादरा में अच्छे व्यापार सम्बन्धी कारोबार में हैं) मोती राम अग्रवाल ने ८५ हज़ार रुपये खर्च कर एक बड़ी भारी धर्मशाला खड़ी कर दी थी, जिस में यात्रियों के लिए बहुत सुन्दर प्रबन्ध हैं। उन्हें नि:शुल्क निवास की सन्तोष जनक सुविधाएं यहां मिल रही हैं। पुण्डरी मन्दिरों का शहर है। लगभग २० मन्दिर इस छोटे से कसबे में विराज-मान हो रहे हैं, जिन की पूजा अग्रवाल सेठों द्वारा कराई जा रही है। बहुत से मन्दिर दो सौ वर्षों के पुराने भी हैं और कुछ एक सौ वर्षों तक के मन्दिरों में अधिकतर राधा-कृष्ण की मूर्तियां स्थापित हैं। खर्च अग्रवाल सेठ ही अधिकतर चलाते हैं। ऊपर महात्माओं के एक आश्रम का कुछ परिचय दिया जा चुका है। अब उसे 'गिरि आश्रम' कह कर इस सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें कह देना आव-श्यक होगा। परम्परा से इस आश्रम के संचालक महात्मा अच्छे तपस्वी चलते रहे हैं। इस में मैंने दो तीन महात्माओं की समाधियां भी देखीं, जिनके सामने

एक प्राचीन शिव मन्दिर खड़ा है। ये समाधियां क्रमशः स्वः ब्रह्मबोध, जल्दगिर तथा मंगलगिर की हैं। तीनों महात्मा अच्छे तपस्वी थे। इस समय आश्रम पर कोई महात्मा नहीं है। केवल पुण्डरी के एक बानप्रस्थी ब्राह्मण श्री लक्ष्मी नारायण व्यास इसे चला रहे हैं। ज्योतिषी अच्छे हैं अतः लोग भविष्य फल पूछने के लिए आते रहते हैं। आश्रन की शोभा इन्होंने अपने श्रम-दान द्वारा अच्छी बना रखी है। इकासी वर्षों की इस बुढ़ौती में भी व्यास जी की इन्द्रीय-चेतना पूर्ण रूप से यन्त्रवत् कार्यशील है। अपने हाथों बगीची की बागबानी भी करते हैं। पूजा पाठ स्नान ध्यान तो चलता ही है।

पुण्डरी शहर की बड़ी विशेषता यह भी है कि साहित्य एवं पाण्डिय के क्षेत्र में इसने अच्छे अच्छे विद्वान पैदा किए थे। व्यास जी ने मुझे कुछ एक विद्वानों के नाम बतलाए जो न्याय व्याकरण के धुरन्धर विद्वान थे और अन्त में विरक्त होकर इसी आश्रम में रहने लगे। उनके नाम थे मोलक राम, गणपत राम, हरी गिर तथा देव गिर। इन्होंने संस्कृत की प्रत्येक शाखा का पाण्डित्य उपार्जित किया हुआ था। इसी श्रेणी में हमारे निबन्ध नायक कवि चण्डीदास सवाल भी आ जाते हैं। उनके गम्भीर पाण्डित्य एवं कवित्व के सम्बन्ध में अपने निबन्ध के किसी अध्याय में मैंने बहुत विस्तृत वर्णन कर दिया हुआ है।

रामायण महाभारत युगीन कुछ अन्य स्थान :—

कुरुक्षेत्र प्रदेश कर्नाल ज़िले के अन्तर्गत है। यह सारा ज़िला कुरुक्षेत्र की महाभारतीय घटना स्थली की सीमा के अन्दर आ जाता है। कर्नाल का वास्तविक नाम कर्णालय है जो उस युग में सूतपुत्र कर्ण ने ही बसाया था जो महादानी के रूप में विख्यात है। इसकी माता कुन्ती थी किन्तु इनका लालन-पालन धृतराष्ट्र के सूत की पत्नी की गोद में हुआ था। यह ज़िला पंजाब के दक्षिण पूर्व में स्थित है और अब हरियाणा प्रान्त में आ गया है। इसके उत्तर में ज़िला अम्बाला, पूर्व में यमुना नदी, दक्षिण में ज़िला रोहतक तथा पश्चिम में ज़िला संगरूर है। कर्नाल से एक छोटी सड़क कैथल को जाती है। इस तहसील कैथल का असली नाम कपिस्थल था जो हनुमान की जन्मभूमि कही जाती है। यहीं से ५० किलोमीटर पर कुरुक्षेत्र तथा थानेसर शहर बसे हैं। कुरुक्षेत्र की सीमा में कर्नाल ज़िले के अन्तर्गत यह समग्र प्रदेश आ जाता है। धार्मिक लोगों की दृष्टि से

शीराजा

इसका प्रत्येक कोना देवों की लीलाओं तथा घटनाओं का स्थल है। मुझे पुण्डरी के गन्यमान्य लोगों ने कहा कि इस शहर के तीन मील पर सीतामई गांव है, जहां राम द्वारा निर्वासित होने पर सीता ने कुछ समय बिताया था।

पुण्डरी से तीन मील की दूरी पर एक मुंदड़ी नामक गांव है, जहां महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। इसी प्रकार थानेसर के अन्तर्गत बला नामक गांव है, जहां राजा बलि ने राज्य किया था। यज्ञशाला अब भी एक टीले के रूप में खड़ी है जिसकी मिट्टी से अब भी हवन की सुगन्धि निलती है। पुण्डरी सरोवर के पूर्वीय किनारे पर मुझे एक अति प्राचीन तालाब के दर्शन कराए गए, जो साल भर में अपने पानी से सात रंग बदलता है। इस समय उसका पानी पीला सा मुझे दिखाई दिया।

महाकवि चण्डीदास की जन्मभूमि पुण्डरी को देख कर मुझे ऐसा लगा कि कवि का जीवन जैसे चमत्कारों की विविधताएं लिए हुए था वैसी ही उसकी जन्मभूमि भी। चण्डीदास शास्त्रों के धुरन्धर विद्वान, धर्मशास्त्र तथा ज्योतिष के प्रकांड पण्डित, महावैयाकरणी, कवि तथा महान तांत्रिक थे। एक व्यक्ति में इतनी योग्यताओं का एक साथ होकर रहने के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। सरस्वती और दुर्गा भगवती दोनों कवि को प्रत्यक्ष थीं, ऐसा सुना जाता है। कर्नाल के पण्डित कमलनयन शास्त्री ने मुझे सुनाया कि कवि चण्डीदास पटियाला में थे तो राजा पर रुष्ट होकर उन्होंने दुर्गा का अनुष्ठान किया, जिस से महलों में आग लग गयी और कवि को पहले मृत्युदण्ड मिला, किन्तु राजगुरु विरागानन्द के कहने पर कि ब्राह्मण की हत्या नहीं होनी चाहिए, देश-निर्वासन मिल गया। तदनन्तर कवि जयपुर राजदरबार में पहुंचा। कवि की रचना "अन्योक्ति जलधि" में भी पटियाला नरेश के प्रति व्यंग्य कटूक्तियां और उसके दुर्व्यवहार की आलोचना पढ़ कर उक्त किंवदन्ती की सत्यता सिद्ध हो जाती है।

वास्तव में पुण्डरो कुरुक्षेत्र का एक महत्वशालो स्थान है, जो भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

हरियाणा की इस यात्रा द्वारा मुझे कवि के सम्बन्ध में वृद्धों की लोक-वार्ताओं से एक अन्य उपलब्धि हुई, जिसके बिना कवि की जीवनी से सम्बन्धित एक पहलू अभी सन्देहात्वक ही रहा था। कवि ने अपने एक श्लोक में संकेत

दिया है कि उसने उदयसिंह के सदन में श्री शिवसहाय से व्याकरण तथा साहित्य की शिक्षा पायी थी। यह उदयसिंह कौन थे तथा श्री शिवसहाय ने उन्हें उदयसिंह के घर में ही क्यों पढ़ाया था। वहां उनका क्या सम्बन्ध था। इस बारे में गहरे चिन्तन और गवेषणा के पश्चात भी मैं किसी प्रामाणिक निर्णय तक नहीं पहुँच पा रहा था। अब की यात्रा में जब कर्नाल निवासी वयोवृद्ध श्री कमलनयन शास्त्री जी से मेरी बातचीत हुई, तो उन्होंने कवि चण्डीदास के सम्बन्ध में अपने पितृपाद से सुनी हुई एक बात कही जिसने मुझे किसी निश्चित निर्णय तक पहुंचा दिया।

उन्होंने कहा—कैथल में एक शताब्दी पहले भाइयों का शासन था। यह सिख शासक भाई कहलाते थे। कैथल के शासक भाई उदयसिंह को किसी शिवसहाय नामक विद्वान् ने न्याय मुक्तावली पढ़ाई। गुरुदक्षिणा के रूप में उन्होंने अध्यापक को सुच्चे मोतियों की माला अर्पित की। कवि चण्डीदास ने एक स्थान पर अपनी शिक्षा के सम्बण्ध में गुरु शिवसहाय की वन्दना करते हुए ऐसा संकेत भी दिया है, जिससे पता चलता है कि उन्होंने उदयसिंह के घर पर पढ़ा था[1]। पं. कमलनयन शास्त्री के कथनानुसार कवि के इस संकेत की अब भलिभांति पुष्टि हो जाती है कि उन्होंने कैथल के राजाश्रित पण्डित शिवसहाय की छत्रच्छाया में बैठ कर साहित्य और व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी। अपनी एक काव्य भूमिका में कवि ने ऐसा संकेतात्मक श्लोक दिया है—

"यतो लब्धं शश्वत्स्फुरदमल काव्यामृतमिदम् ।
ततोऽखण्डं ब्रह्मामृतमपि किमत् पणमिति मतम् ।
प्रतिष्ठाग्रे शिष्टानिशमुदयसिंहस्य सदने ।
तदालम्बे श्रीमद्गुरुशिवसहायांघ्रिकमलम् ॥"

मेरी हरियाणा की इस दूसरी यात्रा में यही उपर्युक्त कुछ उलब्धियां मुझे मिली हैं। इससे पहले पिछले वर्ष की हरियाणा यात्रा में बहुत कुछ इसी सम्बन्ध का मिला था। जिसके आधार पर मेरे एक दो अध्याय लिखे जा चुके हैं। अब

(१) यह काव्य भूमिका कवि के लिखे गये १६२१–२२ के एक काव्य की है। यह काव्य अब अनुपलब्ध है। इस रचना का संकेत कवि के पत्र में से मिला है। पत्र में काव्य का नाम नहीं दिया गया।

इस गवेषणा की उपलब्धियों द्वारा कवि के सम्बन्ध का परिचयात्मक अध्याय और भी परिपुष्ट तथा पूर्ण हो पाया है।

कवि की मृत्यु के सम्बन्ध में मैंने पर्याप्त खोज की किन्तु इसकी निश्चित तिथि कहीं से भी मुझे नहीं मिल पायी। अब की यात्रा में उपलब्ध कवि की जमीन के लगान विवरण सम्बन्धी एक पुस्तक मिली है, जिसमें कवि सरकार को जमीन का लगान इन सन्दर्भों के अन्तर्गत देता था। इसमें निर्दिष्ट सन् द्वारा कवि के जीवन के अन्तिम वर्षों तक का पता चल जाता है। इसके बाद कवि कुछ ही वर्ष जीवित रहा होगा। इस समय वह ७८ वर्षों का था।

SABHA AMBPHALA
LIBRARY
Date
JAMMU

हमारी एकता के प्रतीक—मुसलमान भाइयों के ये जन्म-विवाह सम्बन्धी लोकाचार

—डा. हरिहर प्रसाद गुप्त

भारतीय संस्कृति को समझने के लिये यह आवश्यक है कि भारत के प्रत्तेक वर्ग के धार्मिक विश्वासों तथा रीति-रस्मों का संग्रह और अध्ययन किया जाय। क्योंकि भारतीय सभ्यता कितनी ही जातियों के सम्मिश्रण से बनी है। हिन्दू ओर मूसलमान सदियों से यहां एक साथ रह रहे हैं। अत: हिन्दुओं की प्रथाओं, लोकाचारों पर मुसलमानों का तथा मुसलमानों के रस्मो-रिवाज़ पर हिन्दुओं का प्रभाव स्वाभाविक है।

इस लेख में आज़मगढ़ (उत्तरप्रदेश) के पश्चिमी क्षेत्र के मुसलमान भाइयों में प्रचलित जन्म तथा विवाह सम्बन्धी रस्म-रिवाज का संग्रह है। यह जानकारी मुझे अपने एक मित्र सैयद हुसामुद्दीन, ग्राम भैरोंपुर दरगाह (आजमगढ़), से सन् १९४४ में प्राप्त हुई थी। इसे मैं ज्यों की त्यों देने का प्रयास कर रहा हूँ। थोड़े वहुत अन्तर के साथ ये प्रथायें लगभग सभी मुसलमानों में प्रचलित हैं। इसलिए इनका संकलन और भी महत्त्वपूर्श हो जाता है। इस प्रकार का अध्ययन न केवल भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्त्व रखता है वरन् भारत को वहुरूपता में छिपी एकता को समझने के लिए भी यह आवश्यक है। लोकजीवन की सम्यक् झांकी इन लोकाचारों के माध्यम से ही सिल सकती

है। यद्यपि हम सभी अपने सामाजिक जीवन में इन प्रथाओं को देखते और इनके सम्बन्ध में सुनते हैं, फिर भी हमारा ध्यान इनकी विशेषताओं की ओर नहीं जाता है। इनके लिपिबद्ध हो जाने से निश्चय ही पाठक को इसमें बहुत सी कुतुहलवर्धक, रुचिकर एवं नई नई बातें मिलेंगी। आज के युग की यह मांग है कि हम अपने पास-पड़ोस को भलीभांति और ठीक रूप में समझें तभी हम सब का जीवन सहयोग और शांति से बीत सकेगा। इस अध्ययन से ग्रामजीवन, सामूहिक जीवन, मानव स्वभाव, परंपरा, भाषा, धर्म, लोकरुचि सभी को समझने में सहायता मिलेगी। शुद्ध धार्मिक संस्कार को छोड़ कर ये समस्त लोकाचार हिन्दुओं से मिलते हैं।

जन्म से सम्बन्धित :—

गोद भराई—पहिलौठी (प्रथम शिशु) के प्रसंग में, जब गर्भ पांच या छः मास का हो जाता है, स्त्री के गोद भरने की प्रथा है। लड़की चाहे मायके (पिता के घर) हो अथवा ससुराल में--दोनों ही दशा में इस रस्म को किया जाता है। इस समय कुछ गुलगुला या गुलवरी (आटे में मीठा डालकर पकौड़ी की भांति घी में निकालते हैं) गर्भवती के आंचल में रखा जाता है।

यह गुलगुला और स्त्री द्वारा ओढ़ी हुई ओढ़नीं उसकी ननद पाती है।

कामत कहना या कलमा पढ़ना—जहां जच्चा रखी जाती हैं उसे सौर या सौरी कहते हैं। बच्चा पैदा होने पर उसका नार काटा जाता है फिर उसे नहलाया जाता है। इसके बाद एक पढ़ालिखा आदमी बच्चे के कान में कामत (अज़ान- नमाज़ का बुलावा) कहता है– इसको कलमा पढ़ना भी कहते हैं। इस्लाम धर्म अंगीकार करने के लिए पेगम्बर की वाणी को कलमा कहते हैं।

छट्टी मनाना—बच्चा के पैदा होने के छठवें दिन जच्चा सौर से निकलती है और इस दिन जच्चा और बच्चा दोनो का नहावन (स्नान) होता है। इसे छट्टी या छठ्ठी का नहावन भी कहते हैं।

इस दिन बिरादरी की दावत होती है। दावत में लपसी और चोभा मुख्य भोजन होता है। लपसी–यह आटा गुड़ मिला कर खीर की भांति या गाढ़े हलुवे की भाँति पकाकर बनाया जाता है। चोभा—एक प्रकार की रोटी है, जो

कई रोटियों की तह से बनाई जाती है। तह के बीच में सोंठ और गुड़ पोता जाता है। तह करने के बाद की स्थिति को जोटा कहते हैं अर्थात तह करके जोटा बनाते हैं।

बच्चे को नहलाने के उपरांत मोटिया (जुलाहों द्वारा बनाया हुआ मोटा गाढ़ा) का नया कुर्ता और उसी की टोपी पहनाते हैं। इसी दिन बच्चे का नाम भी रखा जाता है। लड़का हो या लड़की उसके हाथ पर चांदी सोना रखते हैं। कहीं कहीं लड़के के हाथ पर कलम दवात भी बारी बारी से रखते हैं।

इस दिन ढूंढ़ी (चावल का आटा घी में भून कर गुड़ मिला कर बांटते हैं) बना कर लोगों में बांटते है। सारा घर लीपा पोता जाता है।

नहावन—छट्टी के बाद हर तीसरे चौथे दिन बारी बारी से जच्चा नहाती है—इसे नहावन कहते हैं। चालीस दिन के बाद औरत पवित्र समझी जाती है।

लोचना—पहिलौठी के लड़के के समय यदि जन्म पिता के घर हुआ, तो ननिहाल को और यदि जन्म ननिहाल में हुआ तो पिता के घर नाई द्वारा खबर भेजी जाती है। इस खबर भेजने को लोचना कहते हैं। नाई को एतदर्थ इनाम-अकराम मिलता हैं।

हिन्दुओं में भी यह प्रथा है। सन्देशवाहक नाई को चिन्ह रूप में विशेष पुरस्कार मिलता है। वह समाचार सुनाने के साथ घर के बड़ों के मस्तक में हल्दी और अक्षत भी लगाता है।

मूड़न या अकीका :—सौरी के बाल को अपवित्र माना जाता है। इसीलिए मूंड़न किया जाता है। लड़के और लड़की दोनों का ही मूड़न होता है। मूड़न के बाल को चांदी के बराबर तोलकर उस चांदी को खैरात (दान) में खर्च किया जाता है।

मूंड़न के उत्सव में लड़के के लिए बकरे और लड़की के लिये पठ या पाठि (जवान बिना ब्याई बकरी) को हलाल करते हैं इसका गोश्त मां-बाप नहीं खाते। हलाल जानवर का सर नाई पाता है, दोनों रान दाया पाती है। कुछ गोश्त खैरात कर दिया जाता है। चमड़ा भी खैरात कर दिया जाता है। मेहमानों को यह गोश्त खिलाया जाता है। बाप इसे नहीं खाता है।

नमक चशी :—जब बच्चा 6 माह का हो जाता है तब उसे नमक मिला हुआ खाद्य पदार्थ चटाया जाता है। इसी को नमक चशी कहते हैं। इस दिन भी नांत-बांत की दावत की जाती है।

खतना या मुसलमानी :—यह प्रमुख रस्म हैं। खतना तीन या पांच वर्ष के भीतर हो जाना चाहिए।

इस दिन रतजगा करते हैं (रात भर जागकर खुशियां मनाते हैं) और दावत करते हैं। नाऊ को इनाम मिलता है।

कनछेदा :—लड़की के पांच वर्ष होने पर उसके कान नाक छेदे जाते हैं। इसे कनछेदा कहते हैं। रिश्तेदारों को खिलाया-पिलाया जाता है।

विवाह से संबंधित :—

निसबत :—शादी की बात तै होने को निसबत कहते हैं। दोनों ओर से बीच में पड़कर जो शादी तै कराता है उसे अगुआ कहते हैं। निस्बत (अरबी) का अर्थ हैं संबंध।

लड़के को कुछ रुपया आदि देकर विवाह तै करने को छेंकउवा कहते हैं। लड़का एक प्रकार से विवाह के लिए रोक उठता है।

मंगनी या मंङ्गनी :—शादी तै हो जाने पर लड़के की ओर से लड़की के यहां मिठाई, गुलगुला (गुलबरी) दही चूड़ी तथा लड़की के लिए एक लीड़ा कपड़ा जाता है। पिता जब ऊपर के सामानों को लेकर लड़की के यहां जाता है तब उसके सामने एक तश्तरी या तश्त में सादा चावल पका कर रखा जाता है, ऊपर से दही लिपटा देते हैं। दही के ऊपर शक्कर या चीनी छिड़की रहती है और उस पर गरी के महीन-महीन टुकड़े चिपकाए रहते हैं। इस सजे हुए चावल के मध्य में एक छोटी कटोरी में घी रखा रहता है। पूरी तश्तरी एक लाल कपड़े से ढक दी जाती है। यह थाल कहलाता है। थाल खाने वाला उसमें सवा रुपया पांच रुपया या दस रुपया डाल देता है। दूसरे दिन लड़के वाले की बिदाई के समय उसमें कुछ और रकम मिलाकर लड़की वाला उसे देता है। यह पूरा रस्म थाल-पान कहलाता है। इसे जान-जनाव अथवा मंगनी भी कहते हैं।

मंगनी के समय ही शादी की तारीख तै कर ली जाती है। अथवा बाद में लड़के वाला फिर कुछ मिठाई (गुलगुला आदि) लेकर लड़की वाले के यहां जाता

है और वहीं शादी की तारीख, इस्लामी महीनों के अनुसार रखी जाती है।

चक्की रखना :—इस लोकाचार को छोइता भी कहते हैं। छेंकना हो जाने पर या शादी की तारीख तै हो जाने पर मास (स. माष-उड़द) की दाल पीस कर उसकी लोई बनाकर बांटते हैं। कुछ दाल की बरी (डुबकी) डाली जाती है।

मांझा :—विवाह की तारीख के मुकर्रर हो जाने पर लड़की का बाहर आना जाना बन्द हो जाता है। लड़की को नइन उबटन या बुकवा लगाती है। लड़की का नहाना बंद हो जाता है—विवाह के दिन ही फिर वह नहलाई जानी है।

लड़के को भी इसी प्रकार बुकवा लगाया जाता है। आठ दिन पहले से वह गांव के सिवान (सं. सीमान्त) या सरहद्द से बाहर नहीं जाने पाता और न वह इनारा-कुआं ही झांक सकता है। इस पूरे काल को मांझा कहते हैं।

लगन :—बारात जाने के चार छे दिन पहले लड़के की ओर से नाऊ (नाई) लड़के के यहां नवेद लेकर जाता है। लड़की के यहां नाऊ का थाल होता है और लड़की वाला कुछ रकम चढ़ाकर नाऊ के हवाले करता है। नाऊ रकम लाकर मालिक के हवाले करता है।

फिर लड़की की ओर से लगन लेकर हज्जाम (नाई) आता है उसका भी थाल होता है। इसके थाल की रकम वापस नहीं होती।

लगन के बाद रिश्तेदारों के यहां नाई द्वारा सोपारी भेजकर उन्हें शादी की सूचना दी जाती है।

मटमंगरा :—यह रस्म शादी के तीन रोज पहले लड़के के यहां की जाती है। एक औरत एक मचिया पर बैठती है—वह गुड़ की छोटी-छोटी भेलियां और एक पल्ली (परी) सरसों का तेल इकठ्ठी हुई स्त्रियों को बांटती है।

इसके पश्चात् कुछ औरतें चमाइन, धुनियाइन आदि के साथ गीत गाती हुई निकट के पोखरे या पोखरी (तालाब या कोई जलाशय) पर जाती हैं। नाइन के सिर पर एक छोटी टोकरी होती है जिस में पांच भेली होती हैं—यह लाल कपड़े से ढकी रहती है।

ओखरी (अखली) में पहरुवा (मूसल) खड़ा कर दिया जाता है। यह दीवार के सहारे खड़ा रहता है। पहरुवा में लाल नाड़ा बांधा रहता है। लाल धागा मुसलमानों में शुभ है।

भतवानी, भत्तवानी या भत्तवान :—मंटमगरा के बाद और बारात जाने के पूर्व लोगों का खाना-पीना होता है। भत्तवान के लिए पकाए गए मांस-मास की सात परइयां अलग निकाल कर रखी जाती हैं। सात कुंवारी लड़कियों को खिलाया जाता है। खिलाने के पूर्व बीबी का फातेहा होता है। फातेहा[1] का अभिप्राय यह है कि खाने का सामान बाहर सामने रखकर कुरान पढ़ते हैं। औरतों की दुनिया में हजरत फातमा[2] को 'बीबी' कहा जाता है। हजरत फातमा मुहम्मद रसूल की इकलौती और चहेती (प्यारी) बेटी है। इन्हीं बीबी के लड़कों का नाम हसन और हुसैन है। हजरत फातमा की शादी हजरत अली से हुई थी।

इस विशेष भोजन को कनूरी भी कहते हैं। कनूरी में मांसमस रोटी, चना की दाल तथा अंखिया बनाते हैं। आंखिया गेहूँ के आटा की लम्बोतरी खजूर बनाकर उसे जरासा बीच में दबाकर गुड़ में पकाते हैं।

चुल्हनेवता :—भतवानी के दिन ही यह रस्म होता है। चार अइले वाले चूल्हे के चारों अइलों (मुहों) पर चार तउले (तउला)—यह मिट्टी का गगरी से बड़ा बरतन है इसका मुंह भी गगरी से चौड़ा होता है। हल्दी से रंगकर रखे जाते हैं। तउलों के गले में लाल धागा बांधा जाता है।

तउला के भीतर जरा सी शक्कर और जरा सा चावल रखा जाता है। उसका मुंह परई (मिट्टी का छिछला प्याला) से ढक दिया जाता है।

कलसा टीकना :—चूल्हे के पास एक मेटुका (मिट्टी का पात्र) रखा जाता है और उसे सेंदुर (सिन्दूर) से टीका या चीता जाता है। इस मेटुके को कलसा कहते हैं।

---

१. फातिह : (अरबी)—कुरान की पहली सूरत, मुर्दे की नियाज।

२. फातिम : (,,)—हजरत मुहम्मद साहब की सुपुत्री और हजरत इमाम हुसैन की मां।

कंगना बांधना :—भतवानी की रात को दूल्हा के हाथ पैर में मेंहदी और मिस्सी लगाकर उसके दाहिने हाथ में कंगना बांधते हैं। कंगना—कच्चे सूत के धागों से तार बरकर उसमें एक लोहे की अंगूठी और एक पोटरी बांधकर दाहिने हाथ की कलाई में बांधते हैं। पोटली के अंदर जवाइन, सरसों और चोकर होता है।

लगन के बाद हिंदुओं मे भी कहीं कहीं लोहे की अंगूठी पहनाते हैं—कहीं कहीं पोटली भी बांधते हैं। पंडित द्वारा आम का पल्लव हल्दी लगे डोरे के साथ कलाई में बांधने की प्रथा है।

चुमावन :—तदनन्तर रात को नौशा या दूल्हे को आंगन में एक पटरा या पीढ़ा पर उकड़ूं बैठाते हैं। दूल्हे के दोनों हाथों या अंजुरी में कुंआरी लड़कियों द्वारा चावल रखाते हैं। लड़कियों की संख्या पांच या सात होती है। हर लड़की पांच बार चावल रखती और उठाती है।

दूल्हन को ऊरूस भी कहते हैं। इसका भी चुमावन इसी प्रकार उसके घर पर होता है।

हिन्दुओं के यहां भी लड़की और लड़के के चूमने की प्रथा है। लड़के या लड़की की बूआ (फूआ) और कुंआरी लड़कियां इस कार्य को करती हैं। मिस्सी हल्दी, तेल, दूब और चांदी की हंसुली का स्पर्श पैर के दोनों घुटनों, दोनों कंधों तथा मस्तक से कराती हैं और फ़िर उसे चूमती हैं। प्रत्येक को सात वार यह क्रिया करनी होती है। सिलमायन के दिन यह रस्म होता है।

रतजगा :—चुमावन की रात को रतजगा होता है, इसे खुदाई की रात कहते हैं सुबह मसजिद में तथा किसी बुजुर्ग की मज़ार (कब्र) पर थोड़ें गुलगुले फातिहा पढ़ने के लिए भेज दिए जाते हैं।

सगडा :—चुमावन की रात के बाद सुबह बारात जाने के पूर्व दूल्हे को नहलाने की प्रथा है। दूल्हे का बहनोई पच्छिम मुंह खड़ा होकर कुदारी (कुद्दाल) से जमीन में पांच छेद (चोट) मारता है और इस प्रकार जमीन में बने गड्ढ़ को सगड़ा और इस क्रिया को सगड़ा खोदना कहते हैं।

बहनोई को इसके लिए पद या हक मिलता है, उसे आखत के रूप में कुछ रकम मिलती है सूप में चावल, गेहूं, हल्दी, दूब और कुछ रकम रखी जाती है। इसे ही आखत कहते हैं।

खोदे हुए सगड़े पर नाई एक पीढ़ा रखता है, इसी पर दूल्हे को बैठाकर नहलाया जाता है। उतारे हुए कपड़ों को तथा जिस कपड़े से दूल्हा अपना बदन पोंछता है उसे नाई लेता है।

नहाने के पहले पांच औरतें बारी-बारी से हल्की दूब, दही लेकर दूल्हे को चूमती हैं।

जामा पहनाना :—नहाने के बाद दरजी दूल्हे को जामा पहनाता है। यह जामा मलमल का बनाता है। इसे गुलाबी रंग में रंगा जाता है। यह एड़ी तक लम्बा होता है और चुन्नत के द्वारा घेरेदार बना लिया जाता है। इसके चार मुख्य भाग हैं :—

१. आस्तीन। २. चोला—आगे-पीछे या पेट-पीठ वाला हिस्सा। ३. बन या बन्द—बटन के बजाय जामा में बन लगते हैं। ४. कमर से एड़ी तक का घेरा। जामें में सात गज़ कपड़ा लगता है।

सर के लिए एक चुन्ननदार गोल टोपी बनाई जाती है जिसे कुलाह कहते हैं। यह भी मलमल की होती है।

इसके ऊपर मलमल का साफा बांधा जाता है। साफा की पेच में मैमद चोटी (काले ऊन की और काले तागों की बनाई जाती है) बांधते हैं।

जामा के ऊपर कमर पर मलमल का एक टुकड़ा बांधते हैं जिसे पटुका कहते हैं।

दूल्हे का पाजामा लाल चुनरी का होता है। शाहनी संगी—पीले रंग की होती है। (इसे मऊ मुबारकपुर जि० आजमगढ़) में जुलाहे बनाते हैं। दर्जी को कपड़े पहनाने का हक मिलता है।

सेहरा :—सेहरा माली पहनाता है। सेहरा बेले के फूल का चार-पांच लर का बनता हैं। यही साफे के ऊपर बांधा जाता है। माली ही सेहरा बनाता है। सेहरे के ऊपर बहुत बारीक मलमल का एक रंगदार कपड़ा होता है इसे झकना कहते हैं।

नेहछू :—जोड़ा-जामा पहन लेने पर और सेहरा बंध जाने पर नाई हाथ-पांव का नाखून काटता है इसे नेहछू या नेहछुवा कहते हैं। नाई तीन-चार रुपआ अपना पद लेकर तब अंगुली छोड़ता है। सूप में गेहूँ के आटे का दीया बना कर उसमें घी बत्ती डालकर उसे जला देते हैं। इसी आखत में नाई का हक डाल दिया जाता है। मुसलमान इसे चम्मुक कहते हैं।

सिजदा, सिरदा या सलाम :—बारात चलने के पूर्व दूल्हे को मसजिद में सिजदा कराने ले जाते हैं, वहां दूल्हा दो सिजदा करता है। इसके बाद वह मखदूम साहब की कब्र पर सलाम करने जाता है। सिजदा का अर्थ है माथा टेकना।

बारात के साथ जाने वाला सामान :—डाल—लड़के वाले की ओर से लड़की वाले के यहां पाँच-सात जोड़े कपड़े जाते हैं। ये कपड़े सिले नहीं होते, इन्हें चौपत करगोटे से मढ़ देते हैं।

सूहा-सुहाना :—डाल के साथ निकाही जोड़ा भी जाता है जिसे सूहा-सुहाना कहते हैं सूहा का अर्थ है गहरा लाल रंग।

तिलक या पेशवाज :—यह जामा के ढंग का ही होता है। इसका रंग सुर्ख होता है। यह छपा हुआ और सिला हुआ होता है। निकाह के समय यह दुल्हन को पहनाया जाता है। गवन (द्विरागमन) तक इसकी हिफाज़त की जाती है, बाद में ननदों के बीच में टुकड़े होकर बंट जाता है।

ढार या झलवाह :—यह भी दूल्हे की ओर से जाता है। दो बड़े-बड़े झाझर टोकरों में धान का लावा भरा जाता है। इन टोकरों में छोटी-छोटी सात, नव या ग्यारह झांपियां होती है। इन झापियों में दुलहिन का सेहरा, पान के बीड़े, दुलहिन के लिए कामदार जूती, मिस्सी, सेंदुर मंहदी संदल और छर पुरिया या छड़ पुड़िया (सुपारी का फूल, नागरमोथा आदि सुगंधित पदार्थ) रखे जाते हैं। इसी के साथ खांड दो मन, चीनी दस सेर, मेवा, चावल, लौंग-मिरच, इलायची कसैली (सोपारी) मिठाई रेवरा (एक मिठाई) तथा तागा (बजन सवा सेर इसे नारा कहते हैं) भेजा जाता है। सब मिलाकर ढार या झलवाह कहा जाता है।

सोहागपुरा :—यह भी अन्य सामानों के साथ भेजा जाता है, इसमें छड़ पुड़िया सुपारी, हल्दी, जीरा, मंगरैल, धानियां, इलायची, लौंग, मिर्च, नागरमौथा, सोपारी का फूल हरै, हर्रा, बहेरा, गरी, छोहाड़ा, बादाम, मखान लावा, पीपर, सौठ, दालचिन्नी आदि छत्तीस या साठ चीजें होती हैं। इन सब को एक रंगीन कागज में चौकोर रूप में लपेटते हैं। दो फुट लम्बी और एक फुट चौड़ी यह पुड़िया बनती है ओर फिर ऊपर से दो सरफुलाई (सरकंडा) चीर कर बांधते हैं। सरफुलाई एक दूसरे को काटती हुई बन का चिह्न बनाती है। इस प्रकार इसे सजाकर भेजा जाता है। हिन्दुओं के यहां भी सोहागपुरा में लगभग यही सामान होता है।

अंगुश्ताना :—चांदी की यह एक दोहरी अंगूठी होती है जिसके ऊपरी सिरे पर एक छोटा ठप्पा सा बना होता है, यह अंगूठी निकाह के समय दूल्हन को पिन्हाई (पहिनाई) जाती हैं।

बारात का स्वागत :—बारात पहुंचने पर बरातियों को मिर्च पड़ी शरबत पिलाई जाती है। जिसे मिर्चवानी कहते हैं।

कहीं-कही बरातियों से मिर्चवानी की कीमत लेकर उसे मिर्च पीसकर मिलाने वाले को देते हैं।

फिर घराती और बराती दोनों पक्षों में मिलना होता है। इसमें घराती बाले कहीं-कहीं रुपया लेते हैं।

नौलासी का रस्म :—शाम को दूल्हा सवारी पर बैठकर कुछ लोगों के साथ दूल्हन के दरवाजे पर जाता है। नाइन दूल्हे को आम के पल्लो (पल्लव) (पत्ती वाली डौंगी) से पांच वार छूती है और इसी प्रकार दूलहा भी नाइन को पांच बार छूता है।

नाइन की गोद में एक सात या आठ वर्ष कुंआरी कन्या होती है।

महर या मुहर :—शादी तै करते समय ही महर तै कर ली जाती है। महर उस रकम को कहते हैं जो दूल्हे और दूल्हन के लिए तै की जाती है। यह सौ रुपये से एक हजार हो सकती है। पहले तो एक रुपये से

१५१ रुपये तक की प्रथा थी। यह आर्थिक स्थिति के अनुसार तै होती है
दूल्हे की यह रकम दूल्हन को नकद देनी पड़ती हैं पर साधारणत: वह बाद में दे
हैं। यदि तलाक की नौबत कभी आवे तो मियां को बीबी को महर की
रकम तुरंत देनी पड़ती है। हदीस और धार्मिक विश्वास के अनुसार जो महर
की रकम नहीं देता उसे कयामत में पापी करार दिया जाता है और फिरिश्ते
बुरुज से मारकर उसे दौज़क में डाल देते हैं। मरने के पूर्व बीबी से सामान्यतः
लोग माफी मांग लेते हैं।

निकाह :—निकाह पढ़ाने का कार्य काजी करते हैं। जो कोई मौलवी
या आलिम निकाह पढ़ाता है उसी को अब काजी कहते हैं। लड़के और लड़की
के नाबालिग होने पर उनके वली (अभिषावक) से दोनों के संबंध की रजामन्दी
ली जाती में। काजी के साथ दो गवाह होते हैं। इन गवाहों से काजी पूछते हैं
तुम कौन हो ? वे उत्तर में कहते हैं कि जिस वात के आप वकील हैं उसी के हम
गवाह हैं। मौलवी साहब पहले लड़की के पास जाकर (लड़की को नाइन पकड़
कर बेठी रहती है) उससे गवाहों के सामने रजामन्दी लेते हैं लड़की की ओर
से एक रूमाल और एक अंगूठी मौलवी साहब लेकर लड़के की ओर आते हैं
वहां पान, रेवरा, इत्र वगैरह मौजूद रहता है। दूल्हा पच्छिम की ओर मुंह कर
के बैठता है। मौलवी साहब गवाहों से उसी प्रकार पूछ कर फिर लड़के से पूछते
हैं कि फलां के साथ तुम्हारा निकाह इतने रुपये (महर) पर होता है, तुम्हें मंजूर
है ? काजी जी इसे तीन बार पूछते हैं। इसी प्रकार लड़की से भी तीन बार पूछते
हैं। कबूल करने को इजाब कवूल करना कहते हैं। निकाह मजमाआम में पढ़ाया
जाता है। इजाब कवूल करने के पहले काजी जी खुतवा पढ़ लेते हैं। खुतबा
(खत्व) कुरान की और मुहम्मद नबी की धार्मिक बातें हैं।

निकाह हो जाने पर शीरीनी (शक्कर घीना) रेवरा (एक मिठाई) छुहारे
बांटे जाते हैं। सब लोग मुबारकबाद देते है।

निकाह के समय जो जामा दूल्हे को पहनाया जाता है वह सफेद मलमल
का होता है।

लड़की निकाह के समय लड़के के यहां से आए हुए निकाही जोड़े को
पहनती है।

शीराज

निकाह पढ़ाने वाले को दूल्हे की ओर से दो चार रुपये दिए जाते हैं जिसे निकाहना कहते हैं।

मडवा अथवा जिलवा-जुलवा :—आंगन में एक शामियाना बना रहता है उसे ही माडो या मड़ेवा (सं० मण्डप) कहते हैं। दूल्हा छोटे भाई के साथ जिसे सहबाला कहते हैं मड़वे में जाता है। वहां जिनका पद लगता है वे स्त्रियां दूल्हे से मजाक करती हैं। सहबाला जवाब देता है। सहबाला का काम दूल्हे को पान खिलाना भी है।

मज़ाक की दृष्टि से ही दूल्हे की पलंग पर पाटी की ओर दूल्हन को सीरीं (सिरहाने) की ओर बैठाते हैं। दूल्हन को उसकी भोजाई या सहेली एक चद्दर के भीतर छिपाकर रखती है।

कहीं-कहीं पलंग के चारों पावों के नीचे परई रख देते हैं। और मजाक के लिए पलंग पर बिछी चद्दर के नीचे परई, ढकना बेलना वगैरा रख देते हैं ताकि बैठते सभय गड़े। सहबाला होशियार होने पर बिस्तरा फेंककर अलग कर देता है। गांव की स्त्रियां मज़ाक करती हैं और दूल्हे के मुंह पर कोई दही लगाती है कोई गुड़।

सेंदुरबन्दी :—एक औरत दूल्हा का हाथ पकड़ कर दुल्हन के मांग पर सेंदुर और अफ़सा (बरीक अवरक) लगवाती है। दूल्हा की चुटकी में सेंदुर और अफसा होता है। यह काम तीन बार किया जाता है, इसे सेंदुरबन्दी कहते हैं।

इसके बाद दूल्हा और दूल्हन को एक चादर के अंदर करते हैं और उसके भीतर एक औरत दूल्हा को दूल्हन का चेहरा दिखाती है।

सलाम कराई :—इसके बाद दूल्हा की रूमाल पलंग पर फैला दी जाती है उस पर सभी सगेसम्बन्धी सास, साली फूफी आदि रकम डालती है। इस रकम को सलाम कराई कहते हैं। बाहर आने पर इस प्रकार ससुर आदि सलाम कराई देते हैं।

कौन सम्बन्धी क्या देता है इसे लड़की वाला लिख लेता है ताकि उनके यहां विवाह पढ़ते पर इसी प्रकार उसे आदा कर सके।

दहेज :—दहेज में दूल्हन के मां-बाप दादा-दादी के लिए कपड़े देते। जिसे तशरीफी कहते हैं। दहेज को जहेज भी कहते हैं। डाल के कपड़े भी वापस कर दिए जाते हैं। लड़की को एक सोने की नथ दी जाती है, जिसे निकाही नथ कहते हैं। गले के लिए चननहार या गुलाब हार दिया जाता है।

तांबे के बर्तन दिए जाते हैं। पानदान, रिकाबा (तश्तरी) सिलफची (चिलमची) ओगलदान, फरसी (मय नैचा और चांदी के मुंहनाल) भी दी जाती है। कोई कोई पलंग, पीढ़ी, चौपाल (मियाना या पालकी) ओहार, तोशक तकिया भी देते हैं।

रुकसती या बिधाई :—दूल्हन का आरास्ता पैरास्ता करके रुकसती करते हैं। दूल्हन का (फा० आरास्ता-सुसिज्जत पैरास्ता-सज्जित) सिंगार करने वाली औरत को मशशाता कहते हैं। दूल्हन के साथ दाई या नाईन जाती है। दुलहिन सिर्फ एक रात सुसराल रहती है। तीन चार दिन पहले से दूल्हन को अन्न देना बंद कर दिया जाता है केवल दूध देते हैं। दूल्हन के साथ डोली में थाल रख दिया जाता है।

परजापउनी का हक दस्तूर :—विदाई के समय लड़का वाला लड़की वाले को पांच रुपया परजापउनी के लिए देता है। लड़की वाला लड़के वाले के परजापउनी के निमित्त आधी रकम वापिस कर देता है। लड़का वाला परजा के लिए सात साड़ियां ले जाता है। ये साड़ियां नाईन, धोबिन, कोहारिन या कोहार, लोहार, पनभरा, या कहार, मेहतरिन तथा गोबर कढ़िन के लिए होती है। लड़की वाला एक साड़ी दूल्हा की दाई को देता है।

परछन :—दूल्हन के ससुराल पहुँचने पर परछन की प्रथा है। दूल्हन की डोली लेकर दरवाजे पर कहार खड़े हो जाते हैं, डोली के सामने दरवाजे पर दूल्ह खड़ा होता है। नाइन बारी-बारी से पहरुवा (मूसल) सूप लोढ़ा (सिल का) लेकर डोली के ऊपर दूल्हा को शामिल करके घुमाती है फिर दूल्हा दुल्हन को दही का टीका लगाता है।

डोली छेंकना :—इसके बाद हकी-पदी अर्थात् बहनोई जिसका लेने का पद होता है डोली छेंकता है और अपना हक लेकर दूल्हन को उतारने देता है। इस रस्म को डोली छेंकना कहते हैं।

सतकौरा :—परछन और डोली छेंकने के रस्म के बाद दूल्हन को डोली से उतार कर आंनन में ले जाया जाता है, जहां एक कालीन बिछा रहता है। कालीन पर दूल्हन और दूल्हा को आमने-सामने बैठाते हैं। एक औरत दूल्हन का हाथ बाहर निकालती है। यह औरत दूल्हे की भौजाई (भाभी) होती है। यह दूल्हन के दाहिने हाथ पर पके हुए मीठे चाबल को रखती है, दूल्हा उसको उठाकर दूल्हन के मुंह तक ले जाता है—यह काम पांच सात बार किया जाता है।

मुंह देखलाई :—सतकौरा के वाद दूल्हा उठ जाता है और दूल्हन के हाथ पर सास-ननद आदि रुपया रखती है यह रकम मुंह देखलाई कहलाती है, इसे रुनुमाई भी कहते हैं। दूल्हन का मुंह देखने के बदले में यह भेंट दी जाती है।

इसके बाद दूल्हन को महल (जिस कोठरी में दूल्हन के लिए पलंग बिछी रहती है) में ले जाते हैं। महल को खिलवत खाना भी कहते हैं। यह स्थान पहले से ही सजाया रहता है।

शादी के बाद :—

दावत वलीभा :—शादी से लौटकर लड़के वाला सगे संबंधियों को दावत देता है इसे दावत वलीभा कहते हैं। इसमें निम्न सामान बनते हैं :—

१. नान—इसे आवी भी कहते हैं। यह गेहूँ के आटे की वनती है।
२. शीरमाल—इसे रोगनी भी कहते हैं। यह गेहूं के मैदे की घी, दूध, मीठा से बनती है, इसमें पीला रंग दिया जाता है।
३. कुरमा—यह गोश्त का बनता है। यह घी में बनता हैं। हल्दी और तेल नहीं पड़ता हैं।
४. कलिया—यह गोश्त का ही दूसरा नाम है।
५. फीरनी—इसे शीरविरनज कहते हैं, यह चावल, आटा, दूध और चीनी से बनती है। ऊपर से चांदी के वरक लगाये जाते हैं।

मीठा पोलाव :—इसे जरदा भी कहते है। यह चावल, चीनी और घी से बनता है। इसमें जाफरान (केसर) भी पड़ती है।

नमकीन पोलाव :—इस में भुने हुए गोश्त जिसे अखनी कहते हैं, चावल, घी और दूध पड़ता है।

खिलाने का तरीका यह है कि दस्तरखांन बिछ जाता है उस पर हर आदमी के लिए अलग-अलग मिट्टी की प्याली में खाना चुन दिया जाता है। फिर लोग हाथ धोकर खाना खाने बैठते हैं। नाई हाथ धुलाता है।

आमदनी नवेद या न्योत :—खाना खाकर लोग दो-चार रुपया देते हैं, इस रकम को न्योत या आमदनी नवेद कहते हैं।

चौथी :—दूल्हन को ससुराल से पहली बार बिदा कराने की रस्म को चौथी कहते हैं। जो विदा कराने जाता है उसे चौथियारे कहते हैं। दुल्हन तीन-चार दिन के बाद विदा की जाती है।

विदाई के समय दुल्हन को शादी के कपड़े बदल कर दूसरे कपड़े (पहिनाए) पिन्हाए जाते हैं। दूल्हन को कुछ जेवरात भी दिए जाते हैं।

चौथी का जोड़ा :—दूल्हा भी, दूल्हन के साथ, अपनी ससुराल जाता है और उसे वहां पोशाक मिलता है, जिसे चौथी का जोड़ा कहते हैं।

फुलसेरउवा :—यह शादी की आखिरी रस्म है। दूल्हे के सेहरे को पानी पीने वाले कूड़े के नीचे ज़रा सी मिट्टी डाल कर ढक देते हैं।

बरबांस :—इस दिन बड़ा गाना-बजाना होता है। इस दिन बर बांस पकता है। बरबांस-चावल बरी के साथ पकाया जाता है और इसमें हल्दी भी पड़ती है।

शादी के उपरान्त कुछ रस्में इस प्रकार हैं :—

सावनी :—शादी के पश्चात् पहले सावन में दूल्हा की ओर से दूल्हन को दस-बीस जोड़े जाते हैं जो खड़ाऊ रंगदार (रंग से रंगी या मनिहार के द्वारा रंगी) लाह के रंगे चन्द जोड़े, चूड़ियां, मिठाई आदि भेजी जाती है। यह दूल्हा लेकर अपनी ससुराल जाता है उसे विदाई के साथ कुछ रकम मिलती है।

जड़ावर :—पहले जाड़े में लड़के की ओर से लड़की को रजाई, दुलाई, चादर दो चार जोड़े कपड़े, मिठाई भेजी जाती है। इसी को जड़ावर कहते हैं। लड़की वाला भी दामाद को कुछ पहनने के कपड़े देता है।

इदी :—शादी के बाद पहली ईद पड़ने पर लड़के की ओर से लड़की के लिए दो चार जोड़े कपड़े मिठाई भेजी जाती हैं। और लड़की की ओर से सेवइयां आती हैं इस भेजा-भेजी को इदी कहते हैं।

गौना :—शादी के बाद लड़की जब ससुराल आती है (अर्थात् उसकी पहली रुखसती) तो उसे गौना कहते हैं। यह साल भर के अंदर ही होता है। शादी के नवें दिन भी कर दिया जाता है।

इस समय लड़की वाला खाजा या बताशा भरी कुण्डनियां देता है। लड़की को ज्यादा से ज्यादा जोड़े-कपड़े दिए जाते है। नात-बात के यहां से भी लड़की को कपड़े मिलते हैं।

दोंगा :—गौना होने के साल भर के अन्दर ही जब लड़की फिर अपने घर से ससुराल विदा करा कर लाई जाती हैं तो उसे दोंगा कहते हैं।

लड़की वाला इसमें सिर्फ मिठाई देता हैं और अपनी लड़की को दो-एक जोड़े कपड़े देता है।

तेंगा :—दोंगा के बाद तेंगा की विदाई को तेंगा कहते हैं।

काश्मीर : तुम्हारे बिना

भूपेन्द्र कुमार स्नेही

सुबह से ही
मन कुछ टूटा-टूटा सा है
वादियों का अकेलापन
कमरे में मंडराने लगा है
और
हवा का बरफीलापन
धीरे धीरे
मेरी नसों में जमने लगता है।

खिड़की के पार जाती हुई
मेरी नजर में
उदासी की कतारें ठहरने लगती हैं।

मैं नहीं जानता था
कि जिन्दगी
फूलों के नियमों से नहीं चलती
काश !

ये गुलमुहर के फूल
कुछ क्षणों के लिए
झरना भूल जाते।

गीत

श्रीकान्त जोशी

जलमेघों की तरल हथेली
पर जो रखा हुआ है
शायद एक दिया है।
कहने को है चांद
पक्ष के आठ दिवस बीते हैं
मगर रूप के कितने शाहंशाह
आज फीके हैं
नभ के चौड़े खुले वक्ष में
सिमटी निशिबाला ने
यही दीप सा चषक उठाकर
एक गुनाह किया है
फिर मुख फेर लिया है।
शायद एक दिया है।।
यह जलता सौन्दर्य
उष्ण अंबारों सा मादक झीना
नील गगन में देख रहा हूँ
बस अब हो मत हो जीना
इन लपटों को, इस खुमार को
मैंने अभी पिया है
यह ही क्षण था शायद जिसकी
खातिर जनम लिया है।
यह क्षण खूब जिया है।।
जलमेघों की तरल हथेली
पर जो रखा हुआ है
शायद एक दिया है।।

गंधाते शूल

तारादत्त निर्विरोध

झरते हैं फूल - पात
डाली से,
गन्धाते शूल हैं
मौसम की गाली से !

एक नहीं गंध
एक नहीं राग-रंग,
सबके हैं खिलने के
अलग - अलग ढंग,
वृक्षों के हालचाल
पूछें क्यों माली से ?

सूखे से उपवन में
मलयज के गीत,
लगते वेमाने - से
अर्थहीन — लय के
शब्दहीन — संगीत,
चलता है कामकाज
अक्षरों के राज में
शब्दों के हल्लों से
अर्थों की ताली से।

साकार कल्पना

मनसा राम चंचल

आज मैं खुश हूँ कि मेरी कल्पना साकार है।
इस विजय का पर हृदय पर इक मधुर सा भार है ॥

स्वर्ण किरणों से सुवेष्ठित इक नया यह भोर आया।
और कंपित इस सरित का एक सुरभित छोर आया।
खिल उठा है हर्ष विह्वल इस धराका आज कण-कण ॥

और मुखरित हो उठा अब यह सकल संसार है।
आज मैं खुश हूँ कि मेरी कल्पना साकार है।

मैं मनुज हुं इसलिए संसार से ही नह मेरा।
औ' बना है सुख दुखों का इक समन्वय गेह मेरा।
यों अचानक तुम मिले हो इक नई मनुहार लेकर।

आज मैंने पालिया यों चांद पै अधिकार है।
आज मैं खुश हूँ कि मेरी कल्पना साकार है ॥

मिलन यह भी इक घरौंदा बन न जाए भीत हूँ।
किस तरह तुम से यह कह दूं, मैं तुम्हारा मीत हूं।
रास्ते में दो पथिक जब यों अचानक मिल गए हैं।

इसलिए ही आज मेरी साधना साधार है।
आज मैं खुश हूँ कि मेरी कल्पना साकार है ॥

———

दो कविताएं

सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्'

स्रोत

रात के गहन सागर में
एक जीर्ण शीर्ण यान-सी
मेरी लोथ बही जाती है ।

दूर दूर तक
कोई द्वीप नहीं
कोई संकेत नहीं
जो सहारा बने मेरा ।

यदि है तो—
केवल विशाल सुनसान
एक
अव्यक्त वेदना का स्रोत ।

●

हे देव

हर किसी के जीवन में
कुछ न कुछ
फूल खिला करते हैं
जो बांटा करते हैं
परिमल पराग ।

पर—
मेरे जीवन में
खिली नहीं कोई कली
जो दे मुझ को अनुराग
अंकवार ले मुझ को
अपनी बाहों में ।

यदि—
मिला मुझे कुछ
तो प्यास
हे देव !
प्यास ही प्यास ।

●

डोगरी लोक गीत

साम्बा नि साम्बा, आखिये निं गोरियै ।
साम्बा पदरा मदान, साम्बै गबरू पतले ॥
जियां जम्मू दे जबान ।

रत्ते पीढ़े बैठी गोरिये,
कोदे लेई कढनी रोमाल ।
जेढ़े जम्मुआं नौकरी समैलिये,
उन्दे लेई कढनी रोमाल ।

रत्ते पीढ़े बैठी गोरियै,
कोदे लेई लिखनी काट ।
जेढ़े जम्मुआं नौकरी समैलिये,
उन्दे लेई लिखनी काट ।

साम्बा नि साम्बा, आखिये निं गोरियै ।

परछाइयां

बन्धु शर्मा

बुआ का नाम जानकी था, उसके चहरे-मोहरे से उसकी आयु का अनुमान लगा लेना कठिन था और बुआ को अपनी आयु के बारे में कुछ भी मालूम न था। वह अपनी आयु का हिसाब राजे-रानियों के जन्म-मरण से, व्याह शादी से अथवा उनके गद्दी पर बैठने और उतरने से जोड़ती थी। यदि किसी ने कभी पूछ लिया, 'बुआ कितनी आयु होगी तुम्हारी ?' तो वह बड़ी वेदना-भरी आवाज में एक लम्बी आह भर कर, कहतीं—राण्ड विधवा की भी कोई उम्र होती है। "वैसे जब बड़े महाराज का स्वर्गवास हुआ मो मैं अच्छी होश में थी।" जब रामपुर वाली रानी का देहान्त हुआ तब बुआ यौवन की सीढ़ियां पार कर रही थी और जब युवराज का जन्म हुआ तो बुआ अधेड़ हो चुकी थी। पुरोहित हरिचन्द्र जी का कहना था कि जानकी मारकण्डे को बहन है। उसकी देह मजबूत है इसी लिए देखने में वह हमसे छोटी लगती है।

बुआ जानकी के जब हाथ पीले हुए थे तो वह बारह वर्ष की थी। नन्दपुर के जैलदार के घर उसका डोला गया था और जब वह विधवा होकर मायके लौट आई तो उसकी उम्र चौदह की थी। तब से कितनी ही गर्मियां और सर्दियां बुआ ने यहीं, मां-बाप के घर पर ही काट दी थीं। उसका पति पहले महायुद्ध में, मिश्र में, मारा गया था। अंग्रेजी सरकार ने उसकी विधवा के लिए दस रुपये महीना पैन्शन लगा दी थी। अब तक उसके मायके में भी सब लोग मर-खप

गये थे। मायके वालों का यह छोटा सा मकान जिसमें एक दालान, दो कोठियां एक रसोई और रसोई के साथ लगता एक छोटा सा आंगण था, अब जानकी की मलकियत में था।

उस घर में अकेली बुआ का मन नहीं लगता था। इसी लिऐ वह अपना ज्यादा समय मुहल्ले के दूसरे घरों में बिताती थी। यह तो अब जैसे बुआ का दैनिक काम ही बन गया था और जब तक वह दो-चार घरों में घूम फिर कर कुछ सुन सुना न लेती उसे चैन नहीं आता। समय के साथ-साथ बुआ के ज्ञान में भी वृद्धि होती गई। कोई बात हो, कोई चर्चा हो, धर्म-कर्म की अथवा राज-नीति की, वह अपनी राए दिए बिना नहीं रहती। और देती भी क्यों नहीं! धर्म-कर्म का मर्म तो जैसे उसके पल्लू में बन्धा रहता था। व्रहस्पति, शनि, एकादशी, पूर्णमाशी सब का महातम उसे ज्ञात था। कोई नियम, कोई व्रत उसने छोड़ा नहीं था। राजनीति के बारे में भी उसका अपना दृष्टिकोण था। वह कहती थी—"साम, दाम, दण्ड, भेद इन गुणों के बिना कोई राज नहीं चलता। यह गान्धी और ये टोपियों वाले भला राज चलाना क्या जानें?"

गली-मुहल्ले में बुआ की मान-मर्यादा थी। स्त्रियां एक दूसरे से कहतीं—"अरी, बुआ का स्वभाव भले ही कुछ तीखा हो पर, वह है बड़ी धर्म-कर्म वाली और ज्ञान वाली।" बुआ की समझदारी में किसी को कोई शंका नहीं थी। कहीं व्याह-कारज हो, कहीं मुण्डन संस्कार हो, बुआ की महत्ता दुगनी हो जाती। बुआ को बुलाने के लिए सन्देश पर सन्देश आने लगते। कोई लड़की आकर कहती, "बुआ, चलो मां बुला रही हैं।" और बुआ मन ही मन प्रसन्न होकर कहती, "तू चल बेटी, मैं जरा बिष्णु सहस्र नाम का जाप कर लूं तो आती हूँ। जा अपनी मां से कह दे!" अभी उस लड़की को गए कुछ क्षण ही बीतते कि कोई लड़का आ पहुँचता, "बुआ जी, मां कहती है कि पाठ समाप्त हो गया हो तो जल्दी आओ।" बुआ मन ही मन फूल जाती। हाथ में पानी का लोटा थामें, हंस कर कहती, "तू चल बेटे, मैं तुलसी को जल चढ़ा कर आई कि आई।" फिर वह कोठो में जाती, पाठार में से लट्ठे का सफेद कुरता, मलमल की दो पट की चादर निकालती और बड़े चाव से पोशाक बदल कर जूते पहन, कुछ मुनमुनाती उत्सव वाले घर पर जा पहुँचती। डयोडी में घुसते हो बुआ पर शिकायतों की झड़ी सी लग जाती और बुआ खुशी से फूल फूल जाती, लेकिन बनावटी गुस्से से पूछती, "अरी, क्या तुम अब मेरा परलोक भी खराब करो गी? कौन सा काम है जो बुआ

के बिना नहीं हो पा रहा।" और घर वाली जल्दी से कहती कि दहेज के जोड़े अभी टांकने के लिए पड़े हैं। "लो यह भी कोई काम हुआ।" और सूई-तागा लेकर बुआ काम में जुट जाती। सीने परौने का काम अभी पूरा न हो पाता कि दूसरे घर से कोई आ जाता, "बुआ जी, वह पूछ रहे हैं, लड़की ने सुसराल जाना है, उसके साथ कौन-कौन जायगा ?" बुआ धीमे से, भेद-भरी आवाज़ में कहती, "मेरी मानो, एक पुरोहितानी को भेज दो। आज ज्यादा लोगों को भेजने का ज़माना नहीं रहा।" घर वाली पूछती, "कहीं जग-हंसाई न हो!" और बुआ हाथ मटका कर उत्तर देती, "जग-हंसाई क्यों होगी री ? ज़माने का रंग नहीं देखती। आज सगाई, कल ब्याह और परसों गौना।" और जब कुछ दिनों के बाद उस घर की नायन अथवा झीवरी बुआ से शिकायत करती कि उसने उनके चार पैसों पर लात मार दी तो बुआ बड़ी चतुराई से उसके कान में फुस-फुसा देती, "अरी ब्याह जैसे कामों के लिए, गांठ में दाम होने चाहिए। मैं भला क्यों किसी के हक पर लात मारती ? लड़की की मां की अपनी ही मर्जी नहीं थी किसी और को भेजने की और हर ऐसी बात पर मुहर लगवाती हैं बेचारी बुआ की।"

ब्याह-शादियों में बुआ केवल सीने-टांकने ही का काम नहीं करती थी बल्कि, इन कामों से समय निकाल कर वह लड़कियों की टोली में जा बैठती। लड़कियां भी बुआ से गीत गाने की फरमाईश करतीं। दो एक बार यूं ही इन्कार करके, बुआ आंखें बन्द कर, भूले बिसरे गीत के सुर मिलाने लगती। आवाज़ में चाहे रस नहीं रहा था पर सुर ताल तो बुआ का बड़ा सुलझा हुआ होता।

बुआ यमुना, जानकी बुआ को इस प्रकार लड़कियों में बैठे देख कर खीज कर कहती—"ज़रा देखो तो इस सफेद झांटे वाली को! क्या छोकरी बन कर रास लीला रचा रही है!" और बुआ जानकी, जो कुछ समय के लिए अपने आप को भूल चुकी होती, यह सुन कर वहां से उठकर बड़ी बूढ़ियों में आ बैठती। वहां आकर वह झूठ भरी नई सभ्यता पर और नए फैशनों पर टीका-टिप्पणी शुरू कर देती। बुआ यमुना उसे टोकती, "राण्ड अपना समय तू भूल गई है? क्या बन ठन कर सफेद पोशाक पहन कर, निकला करती थी?" और फिर कितनी देर दोनों ओर से व्यंग्यवान चलते रहते। दोनों झुरियों वाले गाल लाल हो उठते। जाने उन भूली-बिसरी स्मृतियों में कितनी गर्मी होती, जो इन बूढ़ी हड्डियों में भी तपश ला देती और यह तपश गालों और कानों तक झलकने लगती।

आज बुआ को रामू शाह के घर जाना था। शाह के बेटे का ब्याह था। शाम को बारात जाने वाली थी। प्रातः काल ही से शाहनी ने अनेक सन्देश, बुआ को बुलाने के लिए भेजे थे। बुआ पूजा-पाठ से निपट कर कपड़ों वाला पटार निकाल कर तैयार होने लगी। उसने लट्ठे का सफेद कुरता बारीक मलमल की दुपटी चादर और सूसी को सुत्थन निकाल ली।

आज थोड़ी सर्दी थी। बुआ के पास आज यदि अपना शाल होता तो वही ओढ़ कर शाह के घर जाती। यह पुरानी चादर ओढ़े वह क्या, किसी के हां जाने योग्य है? यह सोचते ही उसकी आंखों के सामने वह सफेद रंग का शाल घूमने लगा। जो आज से बीस साल पहले, उसने इसी शाहनो के पास गिर्वी रखा था। इस में शाहनी का कोई दोष नहीं था। उसने स्वयं ज़बरदस्ती उसके पास उसे रख दिया था। शाहनी ने तो सौगन्धें दे कर उसे लौटाने का कितना यत्न किया था।

"अरे, बुआ यह क्या करती हो? मुझे उन्हीं की कसम है। मैं तेरा यह शाल नहीं रखूंगी। तुम्हें जितने रुपये चाहिए ले जाओ। जब होंगे लौटा देना।

पर बुआ ने एक न मानी थी, उसने कहा था, "कौन जाने कब तुम्हारे रुपये चुका सकूंगी फिर मैं यह बोझ सिर पर कैसे रख लूं।" शाहनी ने फिर उसे समझाते हुए कहा था, "बुआ चालीस रुपये भी ले जाओ और यह शाल भी।" पर बुआ ने इसे उचित नहीं समझा था। सो लाचार हो कर शाहनी ने उसकी शाल वाली गांठ उठाकर सन्दूक में रख दी थी।

इस बात को आज बीस साल हो चुके थे, पर बुआ के पास कभी भी चालीस रुपये जमा न हो सके। एकाध बार तीस-पैंतीस रुपये इकट्ठे हुए भी, पर कहीं न कहीं फिर कुछ खर्च हो गये। पैन्शन के दस रुपयों से भला क्या बनता? न पेट भर कर खा सको, न भूकों मरो। वह सोच रही थी, "क्या कभी जीवन में उसके पास चालीस रुपये इकट्ठे हो पायें गे? और जब जीवन है भी कितना! यदि शाल उसके पास होता तो उसका जीवन और मरण दोनों निभ जाते।" वह इन्हीं विचारों में डूबती-उतरती, शाह के घर की ओर जाती हुई सोच रही थी, "ऐसे मौकों पर वह शाल को प्रयोग में भी ले आती और मरने पर उसी से उसी का मुर्दा भी ढक जाता।" उसे लगा जैसे उसकी छाती पर एक सिल सी आ पड़ी है, उसकी आंखों में आंसू डबडबाने लगे।"

बुआ जी, शाहनी गुस्से हो रही है। कहती है, "क्या बात है, बुआ ने इतनी देर कहां कर दी ?" जयन्ती नायन की बात सुनकर बुआ ने अपने आप को सम्भाला, उसने अपनी गीली आंखें पोंछी और उसके साथ हो ली।

शाह के घर पहुंचने पर एक बार फिर शिकायतों की झड़ी उसे सहनी पड़ी। लेकिन आज इन बातों से उसे खुशी नहीं हो सकी। उसने किसी की बात का जवाब नहीं दिया। वह आते ही काम में जुट गई। शाहनी के साथ मिलकर उसने सभी चीजें ठीक कीं। कभी यहां जा, कभी वहां जा, कभी यह कर कभी वह कर। ब्याह, शादियों में तो काम बेहिसाब रहते ही हैं, पर यह सब करते हुए भी हरे रंग की किनारी वाला अपना सफेद शाल उसकी आंखों में घूम-घूम जाता और वह उदास हो जाती।

साथ वाले दालान में सुरीले गीतों और जवान कहकहों का शोर सुनाई दे रहा था, परन्तु आज बुआ का मन उस ओर नहीं गया। फिर उसके कानों में बुआ यमुना की आवाज़ सुनाई दी। वह शाहनी से पूछ रही थी, "क्यों राम प्यारी आज जानकी कहां मर गई है ? इधर क्यों नहीं आई ? दो बोल वह भी गा कर सुना देती।" शाहनी ने उसे क्या उत्तर दिया, उसने नहीं सुना, पर वह फिर भी उस तरफ नहीं जा सकी। वह सोच रही थी रामप्यारी का बेटा कल बहू लेकर आयेगा तो वह उससे अपना शाल मांग लेगी। बीस रुपये तो अब भी उसके पास हैं, बाकी बीस की ही बात है। शाहनी पैसे वाली है, और अब तो बेटे के ब्याह की खुशी से उसका कलेजा और भी ठंडा होगा। फिर उसे याद आया कि शाहनी ने तो पहले भी कभी इन्कार नहीं किया था। इन वीस बरसों में शाहनी ने कितनी ही बार उसे शाल ले जाने को कहा था, पर उसने स्वयं ही यह अच्छा नहीं समझा। यूं भी उसे पिछले बीस बरसों में शाल की इतनी आवश्यकता महसूस नहीं हुई थी, लेकिन आज तो उसे अपना सारा जीवन-मरण उसी सफेद शाल में बंधा दिखाई दे रहा था।

"हरे किनारे वाला वह सफेद शाल।"

"पशमीने के धागों से बुना वह सफेद शाल।"

"कश्मीरी कारीगिरों के हाथों बुना वह सफेद शाल !"

"कहीं वह पागल न हो जाये !" उसने सोचा। उसका सिर चकराने लगा। उसे लगा जैसे उसकी आंखों के आगे अन्धेरा सा छा रहा है। उसका अंग-

अंग टूट रहा था। रात काफी बीत चुकी थी। "घर चलूं, कुछ देर सो लूं तो शायद शरीर हलका हो जाए!" उसने सोचा जगराते के लिए स्त्रियों का इकट्ठ हो रहा था। शाहनी बड़े दालान में इधर-उधर घूम रही थी। बुआ उसके पास गई कि उससे पूछ कर चली जाए। अभी कुछ कहना ही चाहती थी कि शाहनी ने अपनी नत्थ उतार कर उसे देदी और एक ताली देते हुए बोली, "ले बुआ, मेरी यह नत्थ कोठी वाले बड़े सन्दूक में रख आ। वड़ा तंग कर रही है यह।"

जानकी लालटैन लेकर कोठी में जा पहुँची। लालटैन को उसने एक ओर रख दिया। संदूक का ताला खोल कर उसने संदूक का ढक्कन उठाया। डिबिया निकाल कर उसमें नत्थ रख कर, सन्दूक वन्द करने लगी थी कि शाल वाली गांठ सामने दिखाई दी। उसने जल्दी से ढक्कन वन्द कर दिया और ताला लगाने लगी। पर दूसरे ही क्षण कुछ सोच कर वह रुक गयी। उसका सारा शरीर कांप रहा था। कांपते हाथों उसने सन्दूक का ढक्कन फिर उठा दिया और शाल की पोटली बाहर निकाल ली। एक नजर बाहिर की ओर झांका और पोटली खोल डाली। शाल जैसा था अभी तक वैसा ही पड़ा था। यह देख वह बड़ी हैरान हुई। शाल आज भी वैसा ही नया और सफेद था जैसे दूध। क्या वह वही शाल था जो उसने बीस साल पहले शाहनी के पास गिर्वीं रखा था? उसने डरते-डरते शाल की तह खोली। ठीक वही तो था। धीरे-धीरे उस ने उसे ओढ़ लिया। उसका शरीर कांप रहा था और माथे पर पसीने की बून्दें झलकने लगी थी।

अचानक उसका ध्यान सामने दीवार की ओर उठ गया। पीछे रखी लालटैन की रोशनी के कारण दीवार पर उसकी परछाईं असाधारण रूप से बड़ी दिखाई दे रही थी। पूरी दीवार और आधे छत पर वह परछाईं पड़ रही थी। उस परछाई में भी जैसे उसे अपना शाल साफ दिखाई दे रहा था। सिर, कन्धे, छाती और पीठ पर लिपटा शाल! वह कितनी भारी भारी दिखाई देती थी! उसने सोचा—"इसके बिना तो वह एकदम खाली खाली सी लगती है।" यह सोचते ही एक स्मित रेखा उसके ओठों पर खिंच गई। उसका घरवाला भी तो इसी परछाई की तरह ऊंचा-लम्बा और भरा भरा था। देहलीज़ पर आकर खड़ा हो जाता था तो सारा रास्ता ही जैसे रुक जाता था। लेकिन नहीं, वह तो कुछ भी नहीं था, नकारा! बस शादी की ओर सदा के लिए चले गए। आज कहीं दिखाई दे तो पूछूं—"भलेमानस, यह कहां का बदला लेना था तुम्हें मुझ से?

और यदि ऐसा ही करना था तो फिर मुझ से शादी करने की क्या ज़रूरत थी ?" पर जो चले जाते हैं वे वापिस कब आते हैं ।

बुआ का गला भर आया । आज वह बहुत उदास थी । एक खीझ सी थी उसके दिल में । वे सभी लोग आज उसे पापी लगते थे जिन्होंने मिलजुल कर उसका डोला नन्दपुर पहुँचाया था । उसका बापू, उसकी मां, उसके मामे और चाचे सभी । और फिर वे लोग भी तो उस बेचारी को इस संसार में असहाय छोड़ कर के ऐसे चले गए कि फिर नहीं आए । कोई उससे पूछने तक नहीं आया कि वह कैसी है ? विवाहित जीवन में उसने क्या सुख पाया ? स्वार्थी कहीं के ! स्वयं तो आराम करने चले गये और मेरे लिए छोड़ गये ज़माने का दुख, एक ठंडा दालान, दो अन्धेरी कोठरियां और दस रुपये मासिक पैन्शन, और-और यह कुछ स्मृतियां, कुछ उदासियां और दर्द-टीस ! पर, पर अब तो यह शाल भी मेरा अपना नहीं है ।

"यदि इस समय कोई आ जाए तो !" यह सोचते ही वह घबरा उठी। उसे अपनी परछाई के पास एक और परछाई दिखाई दी । उसका दम घुटने लगा। सारी देह पसीने से भीग सी गई । पीछे घूमते ही उसने देखा - शाहनी खड़ी मुस्करा रही थी ।"

[मूल—डोगरी]
अनुवादक—चंचल शर्मा

———

एक भीड़भाड़ वाला शहर

शशिप्रभा शास्त्री

होटल के सुचिक्कण फर्श वाले कमरे में बिछे उस सुन्दर पलंग को देख कर रमोला के हृदय में एक विचित्र सिहरन जगी फिर एक टीस, आशंका, भय, परिताप, विषाद और बेकली–मानिक सेठ ने मुड़ कर पूछा।

क्यों कमरा अच्छा लगा ?

'जी ठीक है। रमोला ने धीरे से कहा और फिर वह खिड़की की ओर मुड़ कर खड़ी हो गई। खिड़की की जाली के उस पार कन्नस पर गौरेएं गदर पदर एक दूसरी के ऊपर गिर पड़ रही थीं। पीठ पीछे कुली सामान लगा रहा था। कुली के चले जाने पर सेठ ने फिर चेताया—

'यह जगह अच्छी ही है।' उसने अपने आप कहा और फिर वह धम्म से पलंग पर ढुलक सा गया। रमोला के लिए अब मुड़ना आवश्यक था किन्तु उसका हृदय कांप उठा। अब आगे ? आगे क्या होगा ? वह सोचने लगी थी, तभी सेठ ने पुकारा।

'इधर आओ, इधर बैठो मेरे पास..।' और उसने जबरन खींच कर रमोला को अपने ऊपर लिटा सा लिया।

'ठहरिए में अभी बैठती हूँ ठीक तरह छोड़िए मुझे...।' रमोला ने उठने का प्रयत्न किया, पर उठ नहीं सकी।

'मुझे तुम्हारा इसी तरह बैठना अच्छा लगता है। यों ही लेटी रहो।' सेठ की गिरफ़्त से मुक्त होने में असमर्थ रमोला ने तब स्वयं को असहाय सी हो यों ही छोड़ दिया। सेठ भी निष्क्रिय योंही लेटा रहा—चिड़िया को वह धीरे-धीरे चुग्गा डाल कर ही फांसना चाहता था। सहसा रमोला उठ कर बैठ गई। सेठ की दौंदल देह की बगलों से उसे एक विचित्र प्रकार की दुर्गन्ध आ रही थी, उसका जी मचला उठा। वह तड़प कर उठ बैठी।

'अभी आती हूँ, एक मिनट को छोड़ए, बस अभी आयी।' रमोला सेठ को बलात् ठेल कर बाहर निकल आयी, बाथरूम में पहुंच कर उसने कुल्ले किए मुंह धोया और तब वह फिर भीतर आ गई—

'कपड़े बदल लूं न, सफ़र के कपड़ों से कुछ घिनघिनी सी लग रही है। रमोला ने अपनी जुगुप्सा को छिपाते हुए मुस्करा कर कहा। मुस्कान के माध्यम से उसका चेहरा जगमगा उठा था। सेठ आश्वस्त हुआ, वह उठ कर बाहर चला गया। रमोला साड़ी का पल्लू कंधे से पलंग पर फैंक सामने जड़े शीशे में अपना चेहरा देखने लगी—

गुलाब से इस चेहरे को देख सरजू कैसा बाग-बाग हो उठता था। रमोला !! वह धीरे से फुसफुसा कर माथे पर उड़ती उसकी लटों को फूंक से उड़ा देता था और तब रमोला कैसी अचेत सी हो जाती थी, सरजू की फुसफुसाहटें उसके हृदय को गहरे तक गुदगुदा जाती थीं। किसी विचित्र मोहनी से बंधी सुधबुध खोई वह सरजू के साथ दो तन एक प्राण होती चली थी। सरजू उसका सब कुछ था। वह उससे पृथक् होने की कल्पना भी नहीं कर पाती थी—आज यह सेठ उसके सरजू से इतनी दूर खींच कर ले आया है, इस महानगरी में जहां का कोलाहल और भीड़भाड़ न जाने किस किसका व्यूह बन उसे आच्छादित करती चलती है, न जाने कितनों को किस सहजता से अपने में समो कर निर्द्वन्द्व बना डालती है—अटैची में से निकाल कर उसने साड़ी बदली, बलाउज़ के हुक खोल कर ब्रेज़ियर को ढीला किया और द्वार के ठकठक शब्द के प्रत्युतर में वह द्वार खोल कर एक ओर खड़ी होगई। सेठ गुनगुना रहा था।

कौन ये ले रहा है अंगड़ाई।
आसमानों को नींद आती है॥

रमोला ने चौंक कर देखा, सेठ की आंखों में खुमारी भरी थी। सहम कर उसने खिड़की की ओर फिर मुंह कर लिया सेठ के गुनगुनाने के बोल बदल रहे थे :—

शाम थी धुआं-धुआं इश्क भी था उदास-उदास।
दिल को कई कहानियां याद सी आके रह गई॥

सरजू की धुन, सरजू के बोल, मात्र बांसुरी, ओठों की बांसुरी और पलकों की चिक-हृदय में एक तड़पन सी जगी। कहां होगा मेरा सरजू। नीरव दृष्टि से वह खिड़की के पार देखती रही—

'क्या सोच रही हो ? सेठ ने तकिए पर अधलेटे से ही अपने गले की चेन घूमाते हुए पूछा।

'कुछ नहीं सोचने लगी थी इस बदली वाले मौसम में आपके ये बोल कितने अच्छे लग रहे हैं।'

'यह बदली वाला मौसम और तुम—उफ़ कुछ देर पास आकर बैठो रमोला तुम्हें इतनी दूर लाया हूँ आख़िर किस लिए ?

'किसलिए लाए हैं मुझे ? रमोला ने तभी चटपट पूछा।

'ठीक है, जिस लिए लाया हूँ, वह मुद्दा और है। तुम्हें एक दिन हीरोइन न बनाया तो कहना, पर उस सबके लिए तुम्हें कुछ सीखना पढ़ना भी तो पड़ेगा। रमोला को सेठ ने फिर घसीटा और उसके सिर को थाम कर अपनी छाती पर लिटा लिया, रमोला मौन रही।

'कैसा लग रहा है ?' सेठ के ओंठ हौले से फुसफुसाए।

'क्यों पूछते हैं आप यह सब कुछ ? सब कुछ कह दूंगी तभी जानेंगे क्या ?' रमोला का जी किया वह सेठ को ठेल कर दूर कर दे, चीख कर कहे, मुझे यह सब कुछ घिनौना लगता है, मैं यहां से दूर भाग जाना चाहती हूँ। मुझे तुम्हारी छाया से नफरत है। पर वह बोली कुछ नहीं, आंखें मूंद कर वह शान्त पड़ी रही–मूंदी आंखों के बीच सरजू खड़ा था, छाती पर बालों का

घना जंगल, पुष्ट देह और मछलीदार बाहों का आगोश एक भीनी भीनी सुगन्ध ने उसे चारों ओर से ढांप लिया–बन्द आंखों के बीच से आंसुओं की बारीक धार बह निकली।

क्यों क्या हुआ? सेठ ने उठना चाहा।

कुछ नहीं आप ऐसे ही लेटे रहिए। रमोला सिर को सेठ की छाती से टिकाए रही। सेठ आंखें मूंद कर लेटा रहा।

कहां भटक रही है वह? क्यों आ गयी है वह यहां? रमोला सोचती रही–वह उस दिन भी रोई थी, जब सेठ उनके गांव पहुँचा था। सरजू उन दिनों गांव से बाहर था वह झरने से पानी लेने अकेली जा रही थी, तभी सेठ अपनी टोली के साथ शिकारी की मुद्रा में मिला था। टोली ने ही सेठ को उकसाया था और चिड़िया को सेठ के समीप खिंचना पड़ा था। काश उसके मां होती। मां रही होती तो क्या वह इस तरह सेठ को सौंप दी गयी होती। बाप ने जिस औरत को घर में डाल लिया था, उसीने तिकतिकाया था।

सरजू हमें क्या दे देगा? ठोस्सा। उल्टे बदनामी अलग हो जाएगी लोग कहेंगे शादी से पहले ही बेगैरत बनी घूमती थी। सेठ फिल्मों में काम करवाने ले जा रहा है, तो ले जाने दो। सेठ कहता है हमारी गरीबी दूर हो जाएगी, अब तुम सोच लो और तब बाप ने वही सोच लिया था, जो उसकी गरीबी को दूर कर दे। रमोला को सेठ के साथ आना पड़ा था। उसने भी तो मामा के शहर में दो एक बार सनीमा देखा था सनीमा में काम करने वाली औरतें कितनी सुन्दर होती हैं, कितने आराम से रहती हैं सुना है बड़ी अमीर भी होती हैं। आज बाप की गरीबी कटी है, एक दिन उसकी गरीबी भी कटेगी हाय सरजू के बिना वह कितनी गरीब है। सरजू के साथ रहने से तब उसे कौन रोकेगा। सेठ कसमसाया।

इतनी चुप्पी ठीक नहीं है रमोला, मैं कोई गैर हूं। उठ चल बाज़ार में खाना खाने चलें।

'बाजार में खाना?'

'हां हां बाजार की चकाचौंधी देखेगी तो हैरान रह जाएगी। इतनी रौशनी तूने कभी देखी भी न होगी।'

'मुझे भूख नहीं है सेठ जी तुम खा आओ।' रमोला ने अनिच्छा प्रकट की।

मैं अकेला नहीं खा सकूंगा तुम्हें चलना पड़ेगा। सेठ के वाक्य में अनुनय कम आदेश अधिक था। वह आदेश रमोला को कोड़ा सा लगा, वह उठ कर खड़ी हो गई।

'मैं तैयार हो लूं।' उसने धीरे से कहा।

'हां हां बढ़िया सी रंगीन साड़ी पहनो, आंखें ठण्डी हो जाएं।'

'जी!' रमोला ने फिर धीरे से कहा, जैसे वह सोच न पा रही हो कि उसे क्या करना चाहिए। सेठ इस बार अपने आप उठ कर बाहर चला गया। रमोला ने जार्जेट की ऊदे रंग की साढ़ी पहनी, जिसे सेठ उसके लिए लाया था साढ़ी पहन कर बाहर आयी तो सेठ चौंक गया, रमोला तू कितनी सुन्दर है। इधर आ! सेठ ने उसे दबोच लिया रमोला छुई मुई हो गई, सेठ ने डपटा :—

'बत्तमीज़ लड़की महलों के ख्वाब देखती है ओर इन छोटी छोटी बातों से कतराती है।' सेठ ने जबरन उसे अपनी तरफ झुका लिया और अपने टेढ़े मेढ़े दांतों से उसके ओठों को बुरी तरह काट लिया।

'उई।' रमोला चीखी।

'चुप खामोश हम यहां सैर करने आए हैं हंगामा मचाने नहीं। ज़्यादा चूं चम्पड़ की तो यहां से पुलिस ।' रमोला ने कुछ नहीं सुना वह बाथरूम में जाकर मुंह धोने लगी। सेठ ने बिल्क्रीम बालों में लपेटी और कमरे का ताला बन्द कर बाहर आ खड़ा हुआ।

रमोला बाहर निकली और चुपचाप सेठ के पीछे पीछे सीढ़ियां उतरने लगी। वह रूमाल से अपने ओंठ रगड़ रही थी, सेठ के लिजलिजे ओठों के स्पर्श ने उसके हृदय में गिजगिजी उत्पन्न कर दी थी।

'इस गली को पार करते ही बड़ा भारी बाज़ार आएगा देखती चल और सुन रमोला, हमेशा हंसती मुस्कराती रहा कर। हंसते हुए तू बड़ी खूबसूरत लगती है, मामूली चीज़ थोड़ी है तू।' रमोला के कान के पास फुसफुसाते हुए सेठ ने चौड़ी सड़क पर आकर टैक्सी को इशारा किया। टैक्सी मुड़ कर सामने आ खड़ी हुई :—

'आओ बैठो।' रमोला को पहले चढ़ा कर सेठ ने भीतर आकर टैक्सी का दरवाजा बन्द कर लिया। रमोला का हाथ उठा कर उसने अपनी गोद में रख लिया, उसने आपत्ति नहीं की वह कुछ और सोचने लगी थी, काश इस समय उसका सरजू उसके साथ होता।

गाड़ी फर्राटे से उड़ी चली जा रही थी–लम्बी चौड़ी सड़कें, मोटरों स्कूटरों की कतारें, आदमियों की भीड़ भाड़, विहिकिल्स का शौर-रमोला चकित दृष्टि से देख रही थी, अपनें एकान्त शून्य छोटे से पहाड़ी गाँव में उसने इस सब की कल्पना भी नहीं की थी। अचानक खच्च से गाड़ी रुकी।

'इसे नई दिल्ली कहते हैं। बम्बई हम कुछ दिन बाद यहां का सैर सपाटा करके चलेंगे। यहीं कहीं हम खाना खाएंगे।' सेठ अपनी चांदी की मूंठ वाली छड़ी पर झुका खड़ा था। रमोला विस्मय विमुग्ध दृष्टि से दुकानों में सजी चीज़ों मॉडल और खिलौनों को देखने में तल्लीन थी, उसकी आंखों में शिशु का सा चकित भाव था।

'सुनो इधर इधर।' सेठ उसका हाथ थाम कर उसे एक विशाल हाल में ले गया। रमोला ने भीतर चढ़ कर देखा, कितनें जोड़े बैठे हैं–खी खी कर हंसते हुए पैरों की ताल देकर गुनगुनाते हुए...संगीत की मधुर लहरी ने जैसे सबको एक साथ बांध रखा हो–सेठ ने रमोला को एक कोने वाली सीट पर बैठने के लिए कहा, खुद उसके सामने बैठ गया। रमोला देख रही थी, सामने एक मज़बूत सा अंग्रेज़ छोकरा अपनी गोरी चिट्टी मेम छोकरी के साथ कुछ पी रहा था। सेठ खाने के बैरे को आर्डर दे रहा था। रमोला की आंख उस अंग्रेज़ जोड़े पर ही टिकी थी। गोरी मेम, छोकरे के ओठों से अपने ओठों को सटाए बैठी थी–छि कैसी बेसरमी है। रमोला का जी किया वह थूक दे पर सेठ के डर से ज्यों से त्यों बैठी रही–सेठ ने ही इशारा किया :-

यह देख रही है बम्बई में तुम्हें ऐसी बहुत सी चीजें देखनी पड़ेंगी सबकुछ सीखना पड़ेगा। मैं तुझे यहां कुछ दिन इसीलिए रख रहा हुं कि तू कुछ सीख समझ जाए, एकदम उजड्ड गंवार को किसी कें सामने मैं रख भी तो नहीं सकता। खान से निकले हीरे को धो मांज कर संभालना पड़ता है। सेठ फुसफुसा रहा था।

"छि, कोए चिरौटे की तरह तो मैं कभी नहीं कर सकती।"

"तुम्हें करना पड़ेगा रमोला सब कुछ करना पड़ेगा। यूं गंवार बने रहने से काम नहीं चलेगा।" रमोला सिहर उठी सेठ ने खाना लगवा लिया था। कहां देखा था, रमोला ने यह सब कुछ। पर इस सब के बीच उसे रह रह कर सरजू क्यों याद आता चला जा रहा था। पहाड़ी के नीचे बहती नदी के किनारे खड़े सरकण्डों के मध्य अकेले लेटे बैठे सरजू की याद ने उसे तड़पा दिया, उसे लगा इतनी बड़ी भीड़ और शोर शराबे के मध्य वह बिल्कुल अकेली है। सामने बैठा तोंदल सेठ उसे ज़हर लग रहा था।

मोटर में बैठ कर होटल की तरफ आती रमोला फिर कांपने लगी थी। सेठ ने रहने के लिए यह सकड़ी जगह क्यों चुनी है? वह डर रही थी। मोटर से उतर कर वह सेठ के पीछे चल रही थी—लम्बी सकड़ी गली, ढेरों दुकानें, फूलों की, मिठाइयों की और दाल चावल की—रमोला सोच रही थी इतनी छोटी सी गली और इतनी बड़ी भीड़ इतने जन तो उसके पूरे गांव में भी नहीं होंगे।

होटल के पास पहुँच कर सेठ ऊपर चढ़ता चला रमोला को लगा कहीं से उसका सरजू आकर उसे पीछे से खींचने लगा है—इस तोंदल आदमी के साथ तू कहां जा रही है? ढलती हुई शाम के अंधेरे में सीढ़ियां चढ़ती हुई वह डरने लगी कमरे में घुसते ही सेठ ने फिर दबोच लिया।

"पगली लड़की कुछ समझ सीख यहां ऐसे सिकुड़े सिमटे रहने से काम नहीं चलेगा। थोड़ा आराम करके हम फिर घूमने चलेंगे।"

रमोला कुछ नहीं बोली वह शीशे के सामने खड़ी थी। सेठ उसकी उंगलियों को अपने मुंह में डाल कर फिर उसके मुंह में डालने की कोशिश कर रहा था रमोला तुनक कर पीछे हट गयी, उसके आंसू निकल आए मुझे यह नहीं अच्छा लगता।

"क्यों?"

"मैं नहीं जानती।" उसके सामने सरजू खड़ा था—प्यारा, भोला सा, निष्पाप, सुदृढ़, लम्बा चौड़ा जवान, सरजू, सामने पलंग पर बैठा सेठ उसके सामने अधमरा लद्धड़ बूढ़े कमजोर बैल की तरह दिखलायी दे रहा था।"

मुझे तुम्हारी इस शक्ल से नफरत है। उसने फिर कहना चाहा पर मजबूरन अपने को फिर रोके रही, शायद बड़ी हिरोइन बनने के लिए यह सब कुछ सहना पड़ता है। तभी उसे लगा सरजू उसके बिल्कुल करीब आगया है—"कहे तो इस गंजे सेठ का टेंटुआ दबा दूं ? पर तू कहेगी क्यों, इससे तुझे माल जो मिलता है, दौलत रुपया, ठीक है न।" सरजू दांत पीस कर कह रहा था।

"छि, छि ऐसे मत कहो मत कहो। उसने अपनी आंखें मूंद लीं। सरजू कितना अच्छा था, उसकी कोई हरकत इतनी गन्दी लिजलिजी नहीं थी। उसका स्पर्श कितना मोहक मादक और पवित्र था। सरजू जब उसकी ठोड़ी को उठा कर उसकी आंखों में देखता था तो उसे लगता था वह फूलों की डोली में उड़ी चली जा रही है। सरजू उसके पास होता था तो लगता था वह खुशबू के अम्बार में घिर गयी है। सरजू की बाहों को तो वह खुद अपने गले का हार बना लेती थी और इस सेठ की बाहें जैसे सांपों ने उसे चारों तरफ से घेर लिया हो। सेठ के तम्बाकू से रंगे दांत कितने बदबूदार हैं। सरजू की छोटी छोटी मूछों के नीचे ओठों में झांकते मोती से चिने दांत सरजू उसके कानों में धीमे से फुस-फुसाता था।

"तेरे ओठों में अमृत है रम्मू।" रमोला के चेहरे पर सोचते सोचते विकराल चुप्पी छा गयी। चेहरा एक घनी निराशा और विषाद से ढक गया वह यहां आयी ही क्यों ? अपने गांव के चिनार महुए के पेड़ों की छांह वह क्यों छोड़ आयी ? उसकी आंखें फिर झर उठीं।

"फिर वही मनहूसियत। हमारे पास तेरा चेहरा हमेशा खिला रहना चाहिए रमोला, तू नहीं समझती हमारे पास तेरे लिए क्या क्या है। हम तुझे क्या क्या दे सकते हैं।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए।" रमोला के ओठों ने चीख कर कहना चाहा पर ओंठ भींच कर वह चुप रही। उसका अपना घर उसकी आंखों के आगे तैर गया—दहलीज़ पर जल्लाद बनी खड़ी उसकी मां का स्वर उसके कानों को फोड़ने लगा।

"खबरदार जो फिर अपनी सूरत दिखायी तो नासपीटी को यहीं गड्ढे में गाढ़ दूंगी।" उसका सरजू कहां था तब ? कहां है अब ? वह तो उसको न पाकर

कभी का घर से निकल कर अपनी रमोला को ढूंढता न जाने कहां कहां भटक रहा होगा। रमोला को लगा उसका सरजू बाहर खड़ा दरवाज़ा पीट रहा है।

"मेरी अमानत को तहस नहस करेगा साले सेठ, तेरा खून पी लूंगा।"

दूसरे ही क्षण रमोला को लगा, वह उसे भी बुरी तरह पीट रहा है, बाल उपाड़ कर कह रहा है:—

"इतनी ही बफा थी तुझ में? कहीं नहर सोते में कूद कर क्यों न मर गयी? सरजू के हाथ कितने बड़े और मज़बूत हैं। नन्हीं सी कोमल रमोला को वह एक पल में मसल कर डाल सकता है। इन लिजलिजे हाथों से शरबत पीने से सरजू के हाथ से मसले जाना मरजाना कहीं अच्छा है। रमोला ध्यानमग्न बुत सी बनी बैठी थी। सड़क की सैकड़ों हज़ारों बत्तियों के बीच से अंधेरा दौड़ कर रमोला की आंखों में समाता चला जा रहा था।

"रमोला!"

"जी।"

"तू ठीक तो है। इधर आ मेरे पास इधर इधर···।" सेठ रमोला को धीरे धीरे खींचने लगा था। उसकी आंखों में वहशीपना बुरी तरह नाच रहा था।

"मैं अभी आती हूँ तनिक बाहर जाऊंगी।" सेठ ने संकेत समझ कर बन्धन ढीले किए। रमोला ने चटखनी खोली और बाहर जाकर हल्के से अनजाने में यों ही दरबाज़ा उड़काया और वह झपट कर ज़ीने की तरफ मुड़ ली—एक सीढ़ी दो सीढ़ी तीन सीढ़ी रमोला बिजली की तरह उतरी चली जा रही थी। होटल के नीचे सीढ़ियों के पास बिजली के खम्वे के नीचे एक कुत्ता-कुतिया टंगे से जुड़े खड़े थे—रमोला ने रुक कर नहीं देखा, उस विशाल शहर की सकड़ी गली की भीड़ को चीरती हुई वह दौड़ी चली जा रही थी।

———

पंजाबी कहानी

मां, मुझ को टैगोर बना दो....।

मोहन भंडारी

चिमनियों में से धुआं किसी गरीब की आहों-सा उठ रहा था।

भट्टे के कोने में लगे एक टाहली के वृक्ष के नीचे पड़ा वह धुएं की ओर लगातार देख रहा था।

फिर उसने अपनी रेत-सनी टांगें देखीं, अपने सारे शरीर पर नज़र दौड़ाई। वह साश्चर्य सोच रहा था कि छोटा होता वह कितना गुदाज़ होता था, बल्की बन। प्यारा-प्यारा।

किन्तु अब तो वह धुआं हुई हड्डियों का मात्र एक पिंजर होकर रह गया था।

पल के पल उसे लगा ज्यों वह भी एक चिमनी हो। किसी बन्द हो चुके भट्टे की नाकारा चिमनी। जिसका सारा धुआं निकल चुका हो।

अपने आप पर उसे तनिक खीझ उभरी। उसे अपनी अवस्था पर उससे भी अधिक खीझ उतरी। सबसे अधिक खीझ उसे भट्टे के मुंशी पर आई। जो 'अभी आता हुं' कह कर न मालूम कहां चला गया था। और टाहली के वृक्ष तले पड़ा वह उसकी एक घण्ठे से प्रतीक्षा कर रहा था। यदि वह जाते-जाते पर्ची काट जाता तो उसने आधा से जधिक मार्ग तय कर जाना था।

उसने सोचा-"साला आग की लपट है! आग की लपट !!" फिर वह कुढ़ने लगा। और तब उसकी आखें अपने गधों पर थीं। ईंटों से भरे बोरों के भार से दबे हुए भी वे मौज में घास चरते घूम रहे थे। जैसे कुछ हुआ ही नहीं होता। वे इस तरह मगन थे कि भार उन्हें महसूस ही नहीं हो रहा था। भार तो मानो ढोना ही पड़ता है; कभी कम, कभी अधिक। उन्हें क्या ? मुंशी चाहे दो घण्टे और न आए।

"ये तो, गधे ही रहे न ! सालों !!"

वह उन्हें इस तरह लापरवाह चरते देख कर हंसने लगा।

आदमी और गधे में इतना ही तो अन्तर है। आदमी अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। किन्तु गधा ? गधा तो बस गधा ही होता है।

आदमी अपने अधीन काम करने वालों को भी गधा ही समझता है। क्या हुआ यदि वे आवाज़ उठाते हैं ? और फिर उस आवाज़ का फायदा भी क्या जो सुन कर भी अनसुनी कर दी जाए। उनसे तो गधे हो भले हैं जो सिर गिराकर दिन रात लगे रहते हैं, किन्तु 'फल' के विषय में कभी नहीं सोचते।

उसके गधे अब भी निश्चिन्त चरते घूम रहे थे।

वह उन्हें देख कर फिर हंस दिया।

इस बार उसकी हंसी में वह मुक्ति नहीं थी जो प्रायः हंसी में होती है। बल्कि एक हूक सी उठी थी उसके हृदय में। उसके भीतर एक हीनता सी जागने लगी। वहां टाहली के नीचे पड़ा ज्यों वह सिकुड़ कर गठड़ी हो गया। बहुत छोटा। गधों से भी हीन।

"साला अभी तक नहीं लौटा! गधा !!" वह त्वरा में आ गया। आदमी ही तो था न।

उसने तीन चक्कर सुबह ही लगा लिए थे। चौथा चक्कर लगा कर उसने विश्राम करना था और अपने नेता की बातें सुननी थीं जो उनके गांव में स्कूल का शिलान्यास करने पधार रहे थे।

किन्तु मुंशी 'अभी आता हूँ' कह कर पता नहीं कहां खिसक गया था।

गधे अब भी लापरवाही से चर रहे थे।

आकाश पर छोटे-छोटे बादल जुड़ने शुरू हो गये। हवा के दो-तीन ठंडे

झौंकों ने ही उसकी आंखें भिगो दी थीं। एक बारगी जैसे दृष्य बन्ध गया कोई। वह झूम उठा। झूमते ही उसने 'बोली' गुनगुनाई—

"पल्ला मार के बुझा गई दीवा
अक्ख नाल गल्ल कर गई।"

वह एक बार फिर खिलखिला कर हंसा।

उसे वह दाढ़ी वाला वयोवृद्ध कवि स्मरण हो आया, जो उसके कवि अध्यापक के पास लोक गीत इकट्ठे करता हुआ आ निकला था। बातों बातों में उस खुले बालों वाले कवि ने बताया था कि जब टैगोर को उसने एक 'बोली' सुनाई थी तो वे झूम उठे थे।

फिर उस वयोवृद्ध कवि को उसने बहुत सी 'बोलियां' सुनाईं थीं। खत्म ही नहीं हो पा रही थीं बोलियां। वे खुश हो गए थे। उसे भरपूर दुलार दिया था उन्होंने।

फिर अध्यापक-कवि एवं वृद्धकवि अपनी-अपनी कविताएं सुनाते रहे। वह हैरान हुआ पास बैठा सुनता रहा। उसे तब जीवन में पहली बार पता चला कि कवि और चोर, साधारण आदमियों जैसे ही होते हैं। हाथों पैरों वाले। वही आम आदतें जो आदमियों में होती हैं, उनमें भी हैं।

इसीलिए तो वह वृद्ध कवि हंसने वाली बात पर हंसता था। उदास होने वाली बात पर उदास हो जाता था।

उस दिन उसे अपना अध्यापक भी पूरा कवि लग रहा था। उससे पहले उसे उसके कवि होने का विश्वास ही नहीं होता था। न मालूम क्यों शक हो रहा था उसके कवि होने पर।

एक दिन शर्माते-शर्माते उसने भी एक कविता लिखी थी। लिखी नहीं-लिखी गई। अध्यापक कवि कितना खुश हुआ था उस पर। "बिलकुल टैगोर का रंग, अछूता विचार भाव। बेटा, तुम टैगोर बनोगे। मन न तोड़ना।" उस दिन उसे विश्वास हो गया था कि वह टैगोर बन सकता है।

उसने गीतांजलि का अनुवाद लाकर चार बार पढ़ा, किन्तु उसे समझ न आया। उसे फिर अपनत्व हीन सा लगा।

किन्तु कवि-अध्यापक उसका मन बढ़ाता रहा। "तुम ज़रूर एक दिन टैगोर बन ही जाओगे। तुम्हारी कविता जैसी तो उस वृद्ध की कोई भी कविता नहीं थी।"

उसने उसी वयोवृद्ध कवि की ओर संकेत किया था। अब वह हर विषय पर बढ़िया से बढ़िया कविता लिख सकता है।

किन्तु अब वह कवि, जो कवि से ज्यादा अध्यापक है, इसे कविता ही नहीं मानता। बद्रू कुम्हार हैरान हो रहा था।

फिर उसे वह नेता स्मरण हो आया जो पड़ौसी गांव में ईनाम बांटने आया था। ईनाम लेकर उसकी झोली भर गई थी। कुछ ईनाम उसे अपने मित्र को पकड़ाने पड़े थे। वह स्कूल में प्रथम रहा था। 'रेस' में फस्ट आया था। कविता प्रतियोगिता में फस्ट आया।

उस दिन वह उन्मत था। उस दिन कवि-अध्यापक खुश था। भाषण में नेता ने कहा—"तुम में से ही नेता बनेंगे। तुम में से ही कई महात्मा गांधी महाकवि टैगोर बनेंगे। महाकवि टैगोर, जिसे उसकी मां ने टैगोर बनाया।"

वह भागा भागा अपनी मां के पास गया। सभी ईनाम उसने अपनी मां की झोली में डाल दिए।

फिर उसकी बाहें अपनी मां की गर्दन के इर्द-गिर्द स्वतः ही लिपट गईं। उसने प्यार से कहा—"मां, ए मां। मुझ को टैगोर बना दो।"

"क्या ?" उसकी मां को जैसे कुछ भी समझ में न आया।

"मुझको टैगोर बना दो, मां !" उसने पुनः याचना की।

"मोर !" उसकी माँ को ज्यों अब समझ आ गई थी, बोली, "मोर तो तुम्हारे दुश्मन भी न बनें बेटा।"

उसे अपनी मां पर क्रोध आ गया।

उसे उस खूंटी वाले मास्टर पर क्रोध आया जो उन्हें मोर बनाया करता था। गर्दन के पीछे से वह उनके हाथ पांव बन्धवा देता और हवा में खूंटी घुमा-घुमा कर कहता :—"डंडा पीर है बिगड़ों तिगड़ों का, बेटा।"

ऐसे वे मोर बने घंटा घंटा धूप में तपते रहते ।

फिर उसे वह दिन याद आया जब उसके पिता के शरीर की एक साइड मारी गई थी। दब गई थी। और तब आठवीं में से उठ कर उसे अपने पिता का काम संभालना पड़ा था।

कवि-अध्यापक ने उसके पिता की मिन्नतें की थीं कि वह उसे कम से कम दसवीं पढ़ा ले, किन्तु उसके पिता के एकाकी जवाब ने उसे लाजवाब बना दिया था। उसने कहा था—"मास्टर जी ! जहां रोटी की भी चिन्ता हो, वहां पढ़ाई के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। पहले पेट है, फिर पढ़ाई।"

अध्यापक असहाय सा उनके घर से चला आया था।

उस दिन बद्दू कुम्हार के भीतर आधा टैगोर मर गया था। और आज एक नेता उसके गांव में नए स्कूल का नींव पत्थर धरने आ रहे थे। वह उठ कर बैठ गया। उसके गधे अभी भी आराम से चर रहे थे। चिमनियों में से धुआं अभी भी निकल रहा था। दूर साईकिल पर मुन्शी उसे दिखाई दिया। उसका मन किया कि उसे पड़ते ही नीचे टिकाए।

किंतु हीन भाव ने उसे ऐसा करने से रोक दिया अथवा उसके भीतरी इन्सान ने रोक दिया ऐसा करने से। उसने उठ कर गर्द झाड़ दी। मुंह हाथ धोया और चुपचाप पर्ची कटवा कर तैयार हो गया। सिर पर सूरज आग बरसा रहा था। उसे अपने नंगे पैरों पर तरस आ गया। वे चल-चल कर चॅपनों की तरह फैल गए थे। टांगों की फूली हुई नसें बिजली की तारों की तरह विछी पड़ी थीं जैसे वह सदियों से चलता आ रहा हो।

"चलो, शेरो चलो।" नीले, साले अब रास्ते में न गिरना। कहीं मेरा अपमान करवा दो। घर चल कर भरपेट दाना डालूंगा तुझे।

नीला गधा जो दूसरे गधों से कमजोर था व रास्ते में एक दो बार ईंटों का थैला गिरा देता था, डंडा खा कर–खंखारता हुआ सब से आगे निकल गया।

उसने पगड़ी के कोने से गुड़ की टुकड़ी तोड़ी और थोड़ी सी खा कर फिर बांध ली।

"गांव जाकर खाऊंगा इसे, और पानी पीऊंगा। फिर कुएं की मेंढ़ पर बैठ कर नेता की बातें सुनूंगा।" उसने सोचा।

"मां, यह तुम्हारे हीरे जवाहरात व शाही वस्त्र पहन कर क्या करूं। तुम मुझे इन निर्मूल बन्धनों में मत बांधो। मैं तो संसार के मेले की एक जीवनदायिनी धूल में खेलना चाहूँगा।"

उसे कवि-अध्यापक को स्कूल की दीवार पर टंगी टैगोर की ये पंक्तियां स्मरण हो आईं।

"मैं तो जन्मा, खेला और पला भी धूल में हूँ। किन्तु टैगोर नहीं बन पाया।" उसने कहकहा लगाया और ऊंची ऊंची हंसने लगा।

गर्म गर्म रेत उसके पांव झुलसाने लगी। उमस उतर आई ज्यों कोई जिन्न सारी की सारी हवा पी गया हो।

उसे अपनी मां की याद आई जो कच्ची छत पर पड़ी उमस होने पर सात पुरों के नाम गिना करती थी—"महिरम पुर, उदम पुर...जैन पुर।" किन्तु ऐसा करने पर भी हवा कभी चली थी।

"चल पड़, वैरन, चल पड़।" उसने हवा को ललकारा। सूरज का लाल गोला दमक रहा था।

"अरे सूरज! कम्बख्त तूने भी आज ही चमकना था। पांव जो आज नग्न हैं मेरे। खुद जलते हो और दूसरों को भी जलाते हो।" उसने मानो सूरज को उलाहना दिया।

"अरे बादलो! तुम भी कहीं मर गए क्या? बेटी के यारो।" वह झुंझलाया। दूर से एक बदली उसे आ रही दिखाई दी, वह खुश हो गया, किन्तु फिर न मालूम वह किधर अलोप हो गई। जैसे कई गरीब कमियों के कारण खत्म हो जाते हैं। किन्तु बढ़ते चढ़ते संसार को कुछ पता ही नहीं लगता। ऐसे सूरज बदली की मौत से अनभिज्ञ तपता रहा। गधों की चाल धीमी हो गई।

"तुम सभी शत्रु हो गए—मेरी जान के दुश्मन।" क्रोध में आकर उसने गधों को पीटना शुरू कर दिया। वे हींगते, खंखारते भागने लगे। उसका मन चाहा कि छलांग लगा कर गधे पर बैठ जाए। इस भय से कि गधा भार से बैठ ही न जाए, वह चलता रहा।

सामने वट-वृक्ष के पास कुंआ था। वह खुश हो गया। उसने भरपेट पानी पिया। पगड़ी के किनारे बंधे गुड़ को हसरत भरी निगाहों से देखा, "इसे अब गांव जाकर ही खाऊंगा। साथ ही नेता की बातें सुनूंगा।"

उसने वट-वृक्ष के नीचे रुक कर सोचा।

"कहीं नेता आकर लौट ही न गए हों।" यह सोचकर वह फिर चल पड़ा। पानी में गीले किये उसके पांव झट सूख गये। गर्म-गर्म रेत उसके तले जलाने लगी। फिर उसने एकाएक छाल लगाई। जैसे एक तरकीब सूझी हो उसे। भाग कर वह एक ढ़ाक के पास पहुँचा। उसके पत्ते तोड़े। पगड़ी से लीर फाड़ कर पत्ते उसने पांवों के नीचे बांध लिए।

अब रेत उसे कम गर्म लग रही थी। वह खुश हो गया। बायें हाथ का पिछला पासा होठों पर धर कर उसने बकरा बुलाया। सारी ढ़क्की गूंज गई। अभी भी जैसे उसकी तसल्ली न हुई और उसने एक बोली गुनगुनाई :—

"हाकां मारदे बकरियां वाले
दुध पी के जांईं जै कुरे।

सामने गांव दिख रहा था।

बड़े चाव से वह गांव की फिरनी चढ़ा। स्कूल के सामने आम एवं केले के पत्तों का स्वागतम् मुख्य द्वार लगा था। इर्दगिर्द रंगीन झंडियां झूल रही थीं। चहुँ ओर गर्माहट सी तैर रही थी। स्कूल के मास्टर भगदड़ काम में व्यस्त थे।

वह मस्त हुआ खड़ा देखता रहा। अपना बचपन उसे पुनः स्मरण हो आया।

वह कवि-अध्यापक याद आने लगा जो बाहों में लेकर, लाड़-दुलार से उसे कहा करता था कि एक दिन वह ज़रूर टैगोर बनेगा।

उसे वह वयोवृद्ध कवि याद आया जो गांवों में लोकगीत समेटता घूम रहा था। जिसे उसने सैंकड़ों लोकगीत जवानी सुनाए थे। जो पुनः आने का वायदा करके भी कभी न लौटा।

काश! वह कभी उसे मिले। वह उसे अपने ताज़ा लिखे गीत अवश्य सुनाएगा।

अब वह प्रत्येक विषय पर बढ़िया से बढ़िया कविता कह सकता है।

किन्तु कवि-अध्यापक शायद उसे सदा धूल में रहने वाला एक घटिया कुम्हार समझता है। इसलिए दूर बैठा भी वह उसकी कविताओं को कविताएं नहीं मानता। चूंकि वह सदा धूल में लथपथ रहता है। वह धूल जिसमें खेलने के लिए टैगोर तड़पता रहा। तरसता रहा। उस धूल में वह जी रहा था। पल रहा था। वहां खड़ा न मालूम वह कहां गुम हो गया। खो गया।

उसके होंठ, उसकी आंखें, उसके हाथ पांव ..वह स्वयं एक गीत में ढ़ल गया।

वहां एक गीत लरज रहा था जिसे कभी किसी ने भी अपने मादा होठों से न छुआ।

फिर वह जैसे कांप उठा।

एक गीत बिखर गया।

"एक घूंसा, दो घूंसे। एक घसुन्न...एक और...।"

"ठहर, तेरे कुत्ते कुम्हार की बहिन की...साले, तुम यहां रंग तमाशे देखते हो। तेरे गधों ने मेरे खेत का सत्यानाश कर दिया। कुत्ती जात..।"

एक अफ़ीमी जाट लाल आंखें निकाले गालियां दे रहा था। वह वहां हक्का-बक्का खड़ा रहा।

अफ़ीमी जाट ने पास खड़ी बैलगाड़ी में से एक बांस उठा लिया और उसकी ओर बढ़ा।

वह दहशत के भय से, गधों पर डंडे बरसाता, गर्द में एक विन्दु की तरह सिमट गया, खो गया।...

पगड़ी के किनारे बन्धी गुड़ की टुकड़ी उछल उछल उसकी पीठ तोड़ रही थी।

—हिन्दी रूपान्तर-फूलचन्द्र 'मानव'

गीत

संञा घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा !

जिनें जाई परदेसैं न लाए डेरे,
उनें बैरियें दा चेता आई जन्दा।
होइएं बीतिएं गल्लें परानियें दा,
कोई कोई चेता डंग लाई जन्दा !

संञां घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा !

बस्स डाडें दे कुआं ते कुआं कियां ?
कोई दस्सी जायो चन्न छुआं कियां ?
होई बांबरी सज्जनै ठग्गी लैती,
दिनें रातीं इयै झूरा खाई जन्दा !

संञां घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा !

मन रोऐ इसी पतयाना कियां ?
छन्दे, दस्सी जायो समझाना कियां ?
नैन डुल्ली पौन्दे जदूं उत्त धारा,
कोई गीत बछोड़े दा गाई जन्दा !

संञां घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा !

घरे आलें शा छप्पियै रोई लैन्नीं,
दाग तेरे बछोड़े दे धोई लैन्नीं,
औं चेतें दे दियें गी बाली लैन्नीं,
जेल्लै चौन्नें पासें न्हेरा छाई जन्दा !

संञां घिरदेयां चित्त कमलाई जन्दा !

गीत

शाम ढलते ही मेरा मन बुझने लगता है।

जिसने जाकर परदेश में डेरा लगा लिया है,
उस बैरी की याद आ जाती है—और,
बीती हुई बातों की कोई स्मृति
हृदय में डंक मारने लगती है।

शाम ढलते ही मेरा मन बुझने लगता है।

निर्मम लोगों के बस में रह कर मैं होंठ भी नहीं खोल सकती,
मुझे तुम ही बतला जाओ कि मैं चांद को कैसे छू सकती हूँ?
मैं बावरी हो गई हुं, मेरे साजन ने मुझे ठग लिया है।
यही परेशानी रात दिन मेरे प्राणों को खाए जाती है।

शाम ढलते ही मेरा मन बुझने लगता है।

रोते हुए हृदय को कैसे दिलासा दूं?
मैं तेरे पांव छूती हूं, मुझे यह बता जाओ कि मैं कैसे समझाऊं?
मेरी आंखें छलक उठती हैं, जब भी कोई उस पर्वतमाला के
पार विरह की रागिनी छेड़ देता है।

शाम ढलते ही मेरा मन बुझने लगता है।

घर वालों से छिप कर रो लेती हूँ (और इस तरह)
तेरे वियोग के दागों को धो लेती हूँ!
मैं उस समय तेरी याद के दीपक जला लेती हूँ
जिस समय चारों ओर अन्धेरा छा जाता है!

शाम ढलते ही मेरा मन बुझने लगता है।

●

JAMMU

Professor of Hindi
Bemina College Srinagar

A J & K Academy Publication